7·2

लोकवार्ता

शोध - पत्रिका

जुलाई - सितम्बर, १६६८

लोककला, संस्कृति और जन-जीवन की प्रतिनिधि पत्रिका

संपादक

डॉक्टर अर्जुनदास केसरी

लोकवार्ता शोध संस्थान, राबर्ट्सगंज - सोनभद्र (उ० प्र०)

जिला पंचायत सोनभद्र, भारत की स्वतंत्रता की स्वर्ण जयन्ती वर्ष "१९९८ में स्वाधीनता के महान ऐतिहासिक पर्व पर जनपद सोनभद्र के नागरिकों का हार्दिक अभिनन्दन करती है तथा बधाई देती है ।

१- संविधान के ७३ वें संशोधन के परिप्रेक्ष्य में जिला पंचायत सोनभद्र कृषि की नवीन तकनीकी, प्रसार एवं उन्नत कृषि यन्त्रों को बढ़ावा देकर कृषि उत्पादकता में वृद्धि करने, किसानों को आत्म निर्भर बनाने एवं समग्र ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिये सतत् प्रयत्नशील है ।

२- जिला पंचायत सोनभद्र अपने सीमित संसाधनों द्वारा जनपद के ग्रामीण अंचलों के विकास में सतत् प्रयत्नशील है ।

३- ग्रामीण समस्याओं के समाधान तथा पेयजल के लक्ष्य की ओर हम आपके सहयोग से अग्रसर हो रहे हैं ।

४- जिला पंचायत ग्रामीण अंचलों में राजकीय अनुदान/जिला ग्राम्य विकास अभिकरण से प्राप्त अनुदान तथा जिलानिधि से २० किमी मार्ग का निर्माण कार्य, आंगनबाड़ी केन्द्रों व खड़ंजा आदि का कार्य पूर्ण कर अति निर्धन श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराने यातायात की सुविधा प्रदान कराने हेतु सतत् प्रयत्नशील है ।

५- ग्रामीण अंचलों में एक होम्योपैथिक एव एक आयुर्वेदिक चिकित्सालय का संचालन जिला पंचायत द्वारा किया जा रहा है ।

अतः अपने इन दायित्वों के निर्वहन हेतु जिला पंचायत के समस्त कर दाताओं/लाइसेंस धारकों से अनुरोध है कि समस्त देयकों को ससमय भुगतान कर इस नव सृजित जनपद में जिला पंचायत द्वारा कराये जा रहे विकास कार्यों में अपना योगदान प्रदान करें ।

रामचन्द्र मिश्र
अपर मुख्य अधिकारी
जिला पचायत सोनभद्र

बसन्ती पनिका
अध्यक्ष
जिला पंचायत सोनभद्र

पंजीयन सं० 67223/95

लोकवार्ता शोध-पत्रिका

(*LOKVARTA SHODH PATRIKA*)

जुलाई-सितम्बर 1998

●

संपादक मण्डल

डॉक्टर श्याम तिवारी, श्री मोहनलाल बाबुलकर

श्री अजय शेखर

●

संपादक

डॉक्टर अर्जुनदास केसरी

(राष्ट्रपति पदक-पुरस्कार प्राप्त)

●

लोकवार्ता शोध संस्थान, राबर्ट्सगंज, सोनभद्र (231216) उ० प्र०

लोकवार्ता शोध-पत्रिका (त्रयमासिक)

टेलीफोन : 22625

संपादक : डॉ० अर्जुनदास केसरी

प्रकाशक एवं मुद्रक : डॉ० अर्जुनदास केसरी
सचिव, लोकवार्ता शोध संस्थान, राबर्ट्सगंज, सोनभद्र

मुद्रण का स्थान व पता : सूर्यलाल बाजपेयी
सेवाश्रम प्रिंटिंग प्रेस, जे० 7/1, गोपालगंज बाड़ा,
औसानगंज, वाराणसी

वर्ष : 4, अंक : 3

मूल्य : 25—00 रु० प्रति अंक, वार्षिक : 80 रु०
आजीवन 1100 रु० मात्र

LOKVARTA SHODH PATRIKA

Editor : *Dr. ARJUNDAS KESRI*
LOKVARTA SHODH SANSTHAN,
Robertsganj, Sonbhadra (U.P.)
Price : 25/–, Annual 80/–, Lifelong 1100/–

संपादक : अवैतनिक, अव्यवसायिक

रचनाओं में रचनाकार का अपना विचार है, उससे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है, समस्त न्यायिक वाद जनपद सोनभद्र में होंगे ।

लोक-साहित्य की उपेक्षा :

हिन्दी की वर्तमान राजनीति और उसके विकास का प्रश्न

संत कवि तुलसी के बारे में किसी कवि की इस उक्ति पर मैं विचार करने लगा कि यह क्यों लिखी गयी —

हिन्दी हिन्दू हिन्द नाम, जब लौं जग राजै।
तौ लौं तुलसीदास कीर्ति, महि मण्डल गाजै॥

क्या तुलसीदास ने हिन्दी में रचनाएँ की हैं? क्या वे हिन्दू थे? या हिन्दू ही थे? हिन्दू की परिभाषा क्या है? और क्या वे हिन्दुस्तान के ही थे? कोई भी कवि, लेखक, कलाकार, संत किसी एक देश, काल की सीमा में बंधा नहीं होता। वह स्वयं जगत् का प्रकाशक और प्रकाश होता है।

हिन्दी केवल अब हिन्दुस्तान की ही भाषा नहीं है। वह विश्व की एक शक्तिशाली भाषा है। यदि हिन्दी संस्कृति की बेटी है तो भोजपुरी, अवधी, छत्तीसगढ़ी, बिहारी, राजस्थानी, हरियाणवी, पंजाबी, बंगाली, मराठी, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम आदि प्रादेशिक बोलियाँ भी उसकी सहजाता, सहवर्तिनी तथा सहगामिनी हैं। तुलसी, कबीर, मीरा, जायसी, विद्यापति, सूर तथा अन्य अवधी, ब्रजभाषा के कवि क्या हिन्दी के कवि नहीं हैं? और यदि इन्हें पृथक कर दिया जाय तो हिन्दी की स्थिति क्या होगी? हिन्दी के ही तमाम तथाकथित समीक्षक लोक-साहित्य की उपेक्षा करते हैं। उनकी दृष्टि में जनकवि कवि है ही नहीं। इस हिसाब से तो वीरगाथा-काल, भक्ति-काल, रीति-काल का कोई भी कवि हिन्दी का कवि नहीं है, क्योंकि इनमें से किसी ने खड़ी बोली में रचना नहीं की है। इतना ही नहीं, आधुनिक काल में भी अम्बिकादत्त व्यास तक को हिन्दी-साहित्य के इतिहास से पृथक कर दिया जाना चाहिए। और, यदि इन सबको पृथक किया जायगा तो

थोड़े से कवि, कुछ उपन्यासकार; निबन्धकार तथा अन्य गद्य-विधाओं के रचनाकार ही हिन्दी हैं ? अब तक जितने भी उच्चस्तरीय पुरस्कार हिन्दी के दिये गये हैं, वे प्रायः उपन्यासों पर उपन्यासकारों, कथाकारों को या कि कविता पर कवि को दिये गये हैं, लेकिन इस गद्य के युग में गद्य की और भी सशक्त विधाएँ हैं—आलोचना, निबन्ध, नाटक, जीवनी, आत्मकथा; संस्मरण और लोक-साहित्य, इनकी उपेक्षा की गयी है। जबकि ये विधाएँ कहानी, उपन्यास की अपेक्षा जटिल हैं। कवियों की कसौटी गद्य है तो गद्य की सबसे जटिल विधा निबन्ध है। निबन्ध उन्मुक्त मस्तिष्क की स्वच्छन्द किन्तु विचार प्रधान चिंतनयुक्त यथार्थ अध्ययन पर आधारित गठे हुए सुव्यवस्थित विचारों की अभिव्यक्ति है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से कितनी ही बार बातें हुई थीं, वे हमेशा अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'पुनर्नवा' सहित अन्य उपन्यासों को भी 'गप्प' की संज्ञा से अभिहित करते थे। वैसे भी उपन्यास, कहानी के प्रति लोगों की आम धारणा है कि यह समय काटने और मनोरंजन का साधन है। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि मैंने मौखिक परंपरा से प्राप्त 'लोरिकायन' संग्रह उनके समक्ष प्रस्तुत किया था तो उन्होंने आश्चर्य की मुद्रा में कहा था 'हिन्दी में इस तरह का पहली बार काम हुआ है और इसमें इतना श्रम किया गया है कि इस पर एक लाख रुपये का पुरस्कार भी कम है।' फिलहाल उसपर नामित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार की घोषणा हिन्दी संस्थान द्वारा तब भी उसके प्रकाशन की समस्या थी, तमाम संस्थाओं, प्रकाशकों की ओर से नकारात्मक जवाब ही मिला। एक बड़े प्रकाशक ने तो दो सौ रुपये में उसकी कापी राइट खरीदने की बात कही थी। जबकि 'गप्प साहित्य' को छापने के लिए प्रकाशक अग्रिम धनराशि लेखक को दे देते हैं। यह हिन्दी का संत्रास पक्ष है। तमाम बिखरा पड़ा लोक-साहित्य दीमकों का आहार हो रहा है। कजरी, करमा, लोरिकी, बिरहा, विजयमल, शोभा नयका बनजरवा, सोरठी, विहुला, तमाम लोकनाट्य, लोकगीत, कथाएँ, गाथाएँ केवल लोककण्ठों में हैं। क्या यह सब हिन्दी नहीं हैं ? ऐसे ही अन्य प्रदेशों की लोकवार्ताएँ भी हैं जिनका संग्रह किया जाय और उन्हें प्रकाशित करके उनपर कार्य किया, कराया जाय तो हिन्दी के सम्बर्द्धन के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरी सेवा नहीं हो सकती, लेकिन इस ओर न तो हिन्दी के मठों का ध्यान है

और न मठाधीशों का। अपने को अभिजात्य कहने वाले हिन्दी के तथाकथित साहित्यकार हिन्दी के सबसे बड़े शत्रु हैं, यह कहना कटु होते हुए सत्य है। नयी कहानी, नयी कविता, नये उपन्यास के आज कितने पाठक हैं, लेकिन आज भी लोरिकी, विरहा, कजरी, करमा, लावनी, सोहर, लचारी के सुनने वाले करोड़ों की संख्या में हैं, पर वे पाठक नहीं हैं, क्योंकि अपढ़ हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन अपने अन्तिम दिनों में जब वे विक्षिप्त हो चुके थे और अपनी सहधर्मिणी कमला जी को भी पहचान नहीं पाते थे तो किसी ने उनसे पूछा—आप क्या चाहते हैं तो उन्होंने कहा था—'मुझे मिर्जापुरी कजरी सुनवा दो।' इस विधा का हृदय पक्ष कितना प्रधान है, इससे बढ़कर कोई और प्रमाण क्या हो सकता है। हिन्दुओं का ऐसा कोई पर्व, त्योहार, समारोह, संस्कार नहीं हैं जिसमें लोकगीत न गाया जाता हो, वहाँ न नयी कविता होती है और न कहानी उपन्यास सुनाया जाता है। तात्पर्य यह कि हिन्दी का यथार्थ स्वरूप यहीं है और उसकी उपेक्षा के कारण हिन्दी अपना राष्ट्रीय और राजकीय सम्मान नहीं प्राप्त कर पा रही है।

आश्चर्य है कि अभी तक प्रादेशिक और आंचलिक भाषाओं, बोलियों के समग्र, प्रामाणिक संग्रह का कार्य किया गया है और न उनपर पर्याप्त शोध कार्य हो रहे हैं। प्रामाणिक शब्दकोश, विश्वकोश, मुहावरा कोश आदि भी तैयार नहीं किये गये हैं। हिन्दुस्तानी अकादमी के डॉक्टर जगदीश गुप्त तथा श्री हरिमोहन मालवीय ने संस्कृति विश्वकोश के प्रकाशन की एक योजना बनायी है, देखिये वह कितनी कारगर सिद्ध होती है। ऐसी ही एक योजना हिन्दी संस्थान ने भी बनायी थी, लेकिन वह भी खटाई में पड़ी हुई है। लोकसाहित्य के संग्रह, अध्ययन का कार्य जनपदीय स्तर पर भी कराया जाना चाहिए और इसके लिए साधन मुहैया कराये जाने चाहिए। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'जनपद' का प्रकाशन इसी उद्देश्य से किया था। राहुल जी ने भी एक बार सुझाया था कि प्रत्येक साप्ताहिक या अन्य पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक को एक-आध पृष्ठ स्थानीय साहित्य प्रकाशित करने की अनिवार्यता पर बल दिया था।

कहा जाता है हिन्दी में पाठकों की कमी है। अकेले बंगला का साहित्य जितना पढ़ा जाता है, उतना देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी का

साहित्य नहीं पढ़ा जाता, क्यों ? बंगला प्रादेशिक भाषा है, उसमें लोक-साहित्य लोक-संस्कृति, लोक-भाषा को प्रमुखता दी जाती है। हिन्दी की तरह नयी कविता, नयी कहानी, नया उपन्यास वहाँ नहीं है, है भी तो वह लोक मान्यताओं पर आधारित है। लोक-साहित्य के श्रोता अधिक हो सकते हैं तो पाठक क्यों नहीं अधिक हो सकते हैं, बशर्ते उसमें स्थानीयता का पुट हो। कवि-सम्मेलनों में लोक गीतकार बाजी मार ले जाता है, लेकिन नयी कविता का कवि 'लुप्त' हो जाता है, इसलिए कि वह कवि जन-मानस को न तो आन्दोलित कर पाता है और न ही उसकी रचना हृदय को छू पाती है।

बंगालियों में अपनी भाषा के प्रति मोह है और जब भी वे मिलते हैं तो बंगला ही में बात करते हैं, हम हिन्दी या भोजपुरी, अवधी, राजस्थानी में बात करने में शर्माते हैं, हीनता महसूस करते हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि हिन्दी को घर की चहारदीवारी से, चूल्हा से भी जोड़ो और यह तभी जोड़ सकते हो जब हिन्दी, अवधी, भोजपुरी आदि का अन्तर भुला दोगे।

हिन्दी के विकास के लिए हिन्दी के पुस्तकालय की सभ्यता का विकास होना जरूरी है। बंगाली परिवार का अपना निजी पुस्तकालय भी होता है, लेकिन हम हिन्दी भाषा-भाषियों का कोई पारिवारिक पुस्तकालय नहीं होता, इससे हिन्दी का विकास कैसे होगा ?

पुस्तकालय से आचरण की सभ्यता का विकास होता है। इससे बच्चों के दिल-दिमाग पर अच्छा प्रभाव पड़ता है, उनमें पढ़ने और संग्रह करने की प्रवृत्ति का विकास होता है। इसीलिए प्रत्येक शिक्षित परिवार में एक पुस्तकालय का होना अनिवार्य है।

गद्य की सबसे बड़ी सशक्त विधा निबन्ध है। कोई बताये कि किस निबन्धकार को किस कृति पर सबसे बड़ा या महत्वपूर्ण पुरस्कार या सम्मान अलंकरण प्राप्त हुए हैं। यह कैसे माना जाय कि हिन्दी ने अब तक निबन्धकार पैदा नहीं किया है। हिन्दी जब संघर्ष और संक्रमण के दौर से गुजर रही थी, उस समय भी इसने सर्वश्री प्रताप नारायण मिश्र, डॉ० श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, वियोगी हरि, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हरिभाऊ उपाध्याय, गुलाब राय, महादेवी वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, काका कालेलकर, विनय मोहन शर्मा, दिनकर,

भगवतशरण उपाध्याय, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, धर्मवीर भारती, डॉ० विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, विवेकी राय सहित अनेक निबन्धकारों को जन्म दिया, इस बीच कई निबन्ध संग्रह भी प्रकाशित हुए। इन निबन्धकारों के शताधिक निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुए हैं। तब भी मृत या जीवित किसी निबन्धकार को निबन्ध लेखन के लिए कोई बड़ा पुरस्कार या सम्मान नहीं मिला, जैसे निबन्ध कोई विधा ही न हो। इसी तरह कहानी, उपन्यास के अलावा अन्य विधाओं सहित लोक-साहित्य, इतिहास, लोककला, लोक संस्कृति, आदिवासी जीवन तथा संस्कृति के लेखकों को भी कोई उच्चस्तीय पुरस्कार या सम्मान नहीं मिला। इससे न केवल इन विधाओं के लेखकों के प्रति, अपितु भारतीय संस्कृति और भारतीयता के प्रति भी उपेक्षा का भाव परिलक्षित होता है। आकाशवाणी केन्द्रों से कवियों को वार्ताकारों से अधिक मानदेय मिलता है।

इस तरह हिन्दी के साथ यह सौतेला व्यवहार हिन्दी के उत्थान में बाधक है। हिन्दी के समग्र विकास के लिए इसके प्रत्येक अंग को पुष्ट करना होगा। हिन्दी में लिखने वाले प्रत्येक विधा के लेखकों को एक दृष्टि से देखने की जरूरत है।

अर्जुनदास केसरी

अनुक्रम

मेरी गंगा-यात्रा

—शेख जैनुल आब्दीन

मन कीचड़ से भी अधिक मैला हो ? जीवन कूड़े से भी अधिक निरर्थक लग रहा हो, बदरीनाथ और केदारनाथ को जानेवाले प्राचीन मार्ग से प्रकट गंगा के किनारे-किनारे पदयात्रा करते हुए देवप्रयाग से हर की पौड़ी तक जाया जाय तो निश्चय ही पौड़ी पर निस्सरित निर्मल गंगा-जल से भी अधिक मन निर्मल-विमल हो जायेगा और जीवन-यात्रा की सुखद अनुभूतियों के परिवेश में सुन्दर एवं आह्लादमय मालूम पड़ने लगेगा, यह मेरी अटल धारणा है और जो मेरी व्यक्तिगत अनुभूतियों पर आधारित है। यह बात निराभावुकता नहीं है, बल्कि इसके पीछे उन कठिन, भयावह, दुरूह, रोमांचक और लोमहर्षक पदयात्राओं की सुखद अनुभूतियाँ हैं जो मेरी स्मृति में आनन्द एवं सुख के अजस्र स्रोत बनकर समय-समय पर अभिव्यक्तियों के रूप में फूटती रहती हैं।

जून का महीना था। मैं दो बजे अपराह्न में देवप्रयाग पहुँचा। देव प्रयाग यों तो धार्मिक स्थल हैं, जिनकी आस्थाएँ इसमें निहित हैं, उन्हें इस शब्द से ही आह्लाद की अनुभूति हो जाती होगी, किन्तु मेरी दृष्टि में देवप्रयाग का एक और भी महत्त्व है। भागीरथी एवं अलकनन्दा का पर्वतों की गोद में संगम वह मनोरम, मनमोहक दृश्य है जिसे देखने से यह काल्पनिक धारणा निर्मूल हो जाती है कि 'गंगा' का पाठ, पाठ्य पुस्तकों में पढ़ने से इस्लाम खतरे में पड़ सकता है, बल्कि यहाँ पहुँचने पर जहाँ मन हर्ष से विह्वल है, वहीं यह ख्याल काँटे-सा मन में चुभ कर रह जाता है कि यह पूरा का पूरा उत्तराखण्ड इस्लाम के प्रभाव से अछूता क्योंकर रह गया है ? यह प्रश्न मैं हिन्दुओं से नहीं पूछ रहा हूँ, बल्कि मेरा यह प्रश्न डाक्टर फरीदा से है।

भागीरथी गोमुख से निकलकर बहती हुई देवप्रयाग तक चली आती हैं। जबकि अलकनन्दा अपने उद्गम से देव प्रयाग पहुँचने से पहले विभिन्न स्थलों पर विभिन्न नदियों से संगम करती हुई देवप्रयाग पहुँचती हैं। मन्दाकिनी एवं अलकनन्दा के संगम पर रुद्र प्रयाग, पिंजरों एवं अलकनन्दा के संगम पर कर्ण प्रयाग,

मन्दाकिनी एवं अलकनन्दा के संगम पर नन्दप्रयाग, धौली विष्णुगंगा और अलकनन्दा के संगम पर विष्णुप्रयाग अवस्थित है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय आगोश में अलकनन्दा का अन्तिम संगम भागीरथी से होता है। देवप्रयाग में देवप्रयाग शब्द न जाने क्यों मुझे बड़ा ही संवेदनशील मालूम पड़ता है।

देवप्रयाग से गंगा विभिन्न रूपों में आगे बढ़ती हुई चलीं। पर्वतों के बीच बहते हुए उनके आकार रूप और सौन्दर्य का विवरण लिपिबद्ध करना उतना ही असम्भव है, जितना उसके आवेग को थाम पाना। गहरी-गहरी वादियों में जहाँ उसका हाहाकार मन को प्रकम्पित करता है, वहीं चौड़े पाट पाकर जब वह फैलकर वृहत् कुण्ड के रूप में बदल जाती हैं तो उसका मौन एवं सौम्यरूप देखते ही बनता है। किसी पर्वत की ऊँचाई पर खड़े होकर देखें तो उसका सीधा प्रवाह दूध की तरह सिद्ध होता है और जब वह कहीं मोड़ लेकर घूमकर बह रही हों तो ऐसा लगता है जैसे वहाँ द्वितीया का चन्द्रमा प्रस्फुटित हो गया है। गंगा के किनारे-किनारे दोनों ओर पर्वतों पर अनेक बस्तियाँ उसकी शोभा के तीर्थस्थल भासित होते हैं। यदि कभी आपको सौभाग्य प्राप्त हो और आप वहाँ पहुँचकर उन गाँवों में जायें तो आपको उन वस्तियों के जीवन में एक अविश्वसनीय चारित्रिक निर्मलता, स्नेह-घुली व्यवहारिकता और अपनों का-सा प्यार मिलेगा, इसीलिए मैंने उन बस्तियों को गंगा की 'शोभा के तीर्थ स्थल' नाम से सम्बोधित किया है।

कहीं-कहीं ऐसे स्थल आते हैं जहाँ आप खड़े हों तो वहाँ गंगा का जल ठहरा-सा प्रतीत होता है और सामने पर्वतों की भुजाओं में आलिंगनबद्ध एक अथाह जल बड़े ही गुरुतर किन्तु मन्थर वेग से आता प्रतीत होता है। ऐसे स्थलों पर आप अनायास ही अपने आपको भूलकर घण्टों खड़े रह जायेंगे। ये वे स्थल हैं जहाँ पग अनायास ही किसी अज्ञात सम्मोहन के वशीभूत होकर थम जाते हैं और आँखों से गंगा के उस सम्मोहक रूप को पी-पीकर भी आत्मा तृप्त नहीं होती। मन ऐसा करता है कि निष्प्राण पर्वतों की भुजाओं से उस समस्त जल-राशि को एक बारगी समेट कर अपनी आतुर बाहों में आत्मसात् कर ले।'

कहीं-कहीं मीलों तक पर्वतों के वृक्ष झालरों-सी लटकती हुई अरण्य-बल्लरियाँ गंगा के जल पर झुकी हुई ऐसी लगती हैं जैसे वे उसका स्पर्श कर रही हों, माल्यार्पण कर रही हों। मुझे तो गंगा के जल पर झुके हुए वृक्ष और झुकी हुई वल्लरियाँ प्रकृति द्वारा जगह-जगह गंगा के स्वागत में बनाये गये बन्दनवार सी प्रतीत होती हैं। तरुपातों, 'लतरमंजरियों के झरोखों से जब चांदनी छन-छनकर, सौम्यरूपवती गंगा के मरमरी जल पर फिसलती है तो जल में रूप-ज्योति फूटने

लगती है। आज के आधुनिक यातायात-साधनों के सुखद एवं सरल उपयोग के प्रचलन के आगे कौन पर्वतों की आंचलिक नीरवता में पसरी गंगा की स्वर्गीय छटा को अर्द्ध रात्रि के एकान्त मौन में प्रकृति की गोद में बैठकर देखने का यह दुर्लभ सुख प्राप्त करता है ?

इस समस्त पदयात्रा के बीच जो बात सबसे अधिक मन को आघात पहुँचाती रही, वह थी बदरीनाथ के प्राचीन मार्ग की दुर्दशा। यह मार्ग तथा इस मार्ग पर बने अनेक पुल मानवीय उपेक्षा के कारण टूट-टूटकर तहस-नहस हो गये हैं फिर भी इस मार्ग पर खच्चर अपने पीठ पर जीवन-सामग्रियां लादे यदा-कदा दिखाई पड़ जाते हैं या दरिद्र और विवश लोग इस मार्ग से यात्रा करते बदरीनाथ जाते हुए मिल जाते हैं। इस मार्ग पर अब न कोई स्वास्थ्य एवं सुरक्षा का प्रबन्ध है और न विश्राम और भोजन की व्यवस्था। लोग बताते हैं कि जब मोटर-यात्रा-मार्ग नहीं बना था तो इस मार्ग पर बदरीनाथ की यात्रा खुल जाने पर यात्रियों का न टूटने वाला इन्द्र धनुष, कारवाँ रातों-दिन चलता रहता था, किन्तु आज मोटर वाले मार्ग के आगे इस पद-यात्रा मार्ग को कौन अपनाये ?

मौन की वासना

गढ़वाल की निशिगन्धा सी रात और सीनजूही से दिन में आदमी अपना परदेशीपन जल्दी ही भूल जाता है। वहाँ के निवासियों के मुख्यतः स्त्री वर्ग की काव्यमय बोलियों में वह माधुर्य है कि जैसे उनके अधरों से रस चू रहा हो वहाँ की उत्तुंग पर्वतीय उपत्यकाओंपर रूप-कमल खिलते हैं जिनके कंचन जैसे रूप और कांच जैसी निर्मल आँखों से गढ़वाली सौन्दर्य फूटा पड़ता है। चीड़, सागवान, और देवदार के जङ्गलों में बिहंगों के गान और पवन की मस्त चाल पर बलखाती लतर-वल्लरियाँ और बिहंसते फूल एक ऐसी समा बाँध देते हैं जो नयनाभिराम तो लगते ही हैं, साथ ही हृदय पर वह अमिट छाप छोड़ते हैं जो जीवन के एकान्त क्षणों में सुख और आनन्द के अजस्रधार बनकर फूटते हैं। घाटियों से गुजरती नदियाँ लहराती गाती सी मालूम पड़ती हैं। इन सभी सुखों और प्रकृति सौन्दर्यों पर आज तक जो अनभिज्ञता का आवरण पड़ा है उसका मुख्य कारण उस भूखण्ड स्वर्गलोक के प्रति हम सबकी उपेक्षा ही है।

हम लोगों ने हरिद्वार से नजीबाबाद रेलवे जंकशन पहुँचकर वहाँ से कोटद्वार जाने के लिए गाड़ी बदली। नजीबाबाद से कोटद्वार की एक लूप लाइन जाती है। कोटद्वार गढ़वाल अन्तिम हिल स्टेशन है। गढ़वाल-भ्रमण के लिए दो

मौसम विशिष्ट रूप से सुखद होते हैं। बरसात और शरद पूर्णिमा। मौसम बरसात का था। कोटद्वार से गढ़वाल के अन्तराल मार्ग पर कहीं स्लिप आ गया था। पहाड़ का कोई भाग टूटकर स्खलित हो गया था जिससे मार्ग वहाँ अवरुद्ध था। कोटद्वार से जब हम लोग चले तो फुहिया बरषा हो रही थी। गढ़वाल की पर्वत श्रेणियाँ धुन्ध के आवरण में विलीन हो गयी थीं। मोटर नपी-तुली सर्पिणी जैसी बलखाती भींगी सड़क पर दौड़ रही थी। सड़क के एक तरफ जल में भींगते वृहदाकार पर्वत दूसरी तरफ गहरी वादी में बरसाती जल के प्रवाह का हाहाकार, सड़क पर जहाँ स्खलन था, मोटर वहाँ आकर रुक गयी। बहुत सारे ढौढियाल, (नेपाल की तराई के लोग जो यहाँ सड़कों पर मजदूरी का कार्य करते हैं और जिन्हें वहाँ की स्थानीय बोलो में साथी' कहते हैं), हम लोगों की तरफ आकर पूछने लगे, 'साब! साब! सामान आपका जायगा, हम ले जायगा।' चार साथियों ने हम लोगों का सामान एक विशिष्ट प्रकार की रस्सी के बने झूले पर लटकाकर, जिसका एक भाग जिससे वे सामान के बोझ का भार सम्हाले रखते हैं, उसे माथे पर टिकाएँ रखते हैं और झूमते हुए चलते हैं। बरसात में भींगी हुई पहाड़ियाँ उनकी दुर्गम चढ़ान। फिर भी वे बड़े सधे कदमों से चढ़ते जा रहे थे। मैं भी चूंकि यहाँ पिछले पाँच वर्षों से रहता चला आ रहा था इसलिए सरोज को बड़े ही निर्भीकता से उसके हाथ पकड़े हुए पथ की दुर्गमताओं को पार करता चला आ रहा था। मैंने सरोज को पहाड़ों पर चढ़ने की और चलने की प्रथम शिक्षा यहीं ही दी थी। मैंने उसे बताया था कि पहाड़ की चढ़ान पर शरीर पर जोर लगाकर नहीं चढ़ना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो झुक कर झूमते हुए पर्वतों की चढ़ान पर चढ़ना चाहिये। चढ़ते समय सीने पर पहले भार सा अनुभव होता है फिर अन्दर भत्थी सी चलता मालूम पड़ती है। इससे घबड़ाना नहीं चाहिये, क्योंकि यह स्थिति अल्पकालिक होती है। यह इसलिए होता है कि ज्यों-ज्यों आदमी ऊँचाई पर चढ़ता जाता है, हवा का दबाव कम होता जाता है जिससे चढ़ने वाले को सांस लेने में कठिनाई होती है। ठिगनों में पीड़ा सी होती है लेकिन जांघ नहीं भरती पर्वतों के दुर्गम रास्तों में सबसे बड़ा साथी और सहयोगी कमर से कुछ छोटी छड़ी होती है। अवसर और आवश्यकता के अनुसार इसकी महत्ता समझ में आती है।

सरोज के साथ होने के कारण इस दुर्गम पहाड़ी मार्ग को चार घण्टे में पारकर हम लोग उस जगह पहुँच गये जहाँ मार्ग पर हम लोगों को हमारे

गन्तव्य स्थान पर पहुँचाने के लिए मोटर उपलब्ध थी। चार बजे शाम को हम लोग डाडा मण्डी पहुँच गये। वहाँ से खच्चर द्वारा अपना सामान सिलोगी भेजकर हम लोग वहीं एक मित्र के यहाँ रात्रि विश्राम के लिए रुक गये। सरोज काफी रात गये तक जाग रही थी। कन्दील उसके कमरे में जल रही थी। कन्दील की रोशनी के खिड़कियों और किवाड़ों के शीशों पर कृत्रिम आवरण बन गया था। अगल-वगल की पहाड़ियों पर पुरवा के विक्षिप्त झकोरों के साथ बड़ी ही घमासान वर्षा प्रारम्भ हो गयी। वादी में दौड़ता बरसाती पानी और पुरवा का न थमने वाला झोंका तरु-पातों को झकझोर-झकझोर रात की शान्ति निस्तब्धता को क्षत-विक्षतकर वातावरण को बेचैन किये हुए था।

प्रात का तड़का होते ही सरोज जागकर बाग में टहल रही थी। रात भर बादल बरसकर अब खुल गये थे। प्रातःकाल बड़ी ही सुहावना फिजा थी। ताँबे की मजी हुई बटलोही की तरह पीली-पीली ताजी धूप खिली थी। सामने की पहाड़ियों पर वादी से उठा हुआ घनेरा कुहरा फैलता जा रहा था। सरोज के लिए यह दृश्य बड़ा ही रहस्यमय, रोमांचक और आकर्षक था। शान्त पाराशर की भाँति पर्वत की ऊँचाई पर फैलते हुए कोहरे के मनमोहक दृश्य को सरोज अपने कमरे में बन्दकर लेने के लिए मचल गयी। यह कोहरा गढ़वाली भाषा में 'कोयडी' कहलाता है। दो पर्वतों के बीच बादी में भरे हुए कोहरे का गढ़वाली लोकगीतों में बड़ी ही अछूती उपमा दी गयी है। 'मेरो जोकुड़ा मांग्बै ! कुवेड़ी सी लोको' यद्यपि इस वाक्य का अनुवाद नहीं किया जा सकता। भावार्थ में दिल में हूक का उठना कह सकते हैं। हिन्दी साहित्य में व्यथित हृदय की यह अनूठी अभिव्यक्ति केवल गढ़वाली लोग के गीतों में ही सुलभ है अन्यत्र किसी भाषा साहित्य में नहीं।

दिन काफी चढ़ आया था। सात मील की सीधी कष्ट साध्य कठिनतम चढ़ान के, प्रथम तीन मील पर ही थककर सरोज लड़खड़ाने लगी। उसका फूल सा चेहरा थकान के कारण झुलस सा गया था। जहाँ हम लोग रुके थे वह स्थान एक घने चीड़ के वृक्षों से भरा था। बड़ी ही सुहावनी शीतल छांव थी। पवन मधुर स्वर में गढ़वाली गीत गुनगुना रहा था। फूलसुगी पक्षियों के जोड़े कभी हरी मखमली घास की कालीनों पर, कभी चीड़ की कोमल-कोमल रेशमी बालों जैसी पत्तियों में फुदुक-फुदुक कर आस-पास के वातावरण को सुखद सुहावनी बनाये हुए थे। चीड़ के मोटे-मोटे तनों की जड़ों से कुछ ऊपर अलमूनियम के गिलासों में 'लूसे' भरकर बह रहे थे। उनकी सोंधी गन्ध रह-रहकर

महक उठती थी। कुछ देर आराम करने के बाद सरोज ताजा हो गयी। मुझे सरोज एक खिले हुए महकते फूल की तरह मालूम हो रही थी। उसके झील जैसे मुख पर खिले दो कमल की भाँति नेत्रों में जीवन की धवलता फूल पर शबनम की बूँदों की तरह झिलमिला रही थी। हम लोग एक दूसरे से अलग किन्तु चीड़ के दो समीपतम जड़ों पर पीठ टेके बैठे हुए थे। सामने वाली पहाड़ी डांडे पर खच्चरों का कारवां अपनी पीठ पर जीवन सामग्रियों की बोरियां लादे हुए चले जा रहे थे। उनके गलों में बंधी घण्टियां बज रही थीं जिनका स्वर हम लोगों तक पहुँचकर ऐसा भला मालूम पड़ रहा था जैसे दूर किसी मन्दिर से घड़ियाल के बजने की आवाज आ रही हो। उस पर्वत के कुछ आगे एक मोड़ था जहाँ खच्चर मुड़कर अन्तर्ध्यान हो जाते। ठहरे शान्त स्थिर जल में एक कंकड़ी सी फेंकते हुए अपने बीच छायी खामोशी को भंगकर मैंने कहा, 'सरोज हम लोग यहाँ कब तक बैठेंगे। चलते रहने का नाम जीवन है। मैं जानता हूँ कि तुम्हें हर सुखद क्षणों में एक कमी का आभास होता है किन्तु तुम्हारे दिल के खरोंच और तुम्हारी पीड़ा को जानकर ही मैं तुम्हें सृष्टि के उस भू-भाग में लाया हूँ जहाँ तुम अपने दुखान्त एकाकी जीवन के विष को प्रकृति के शाश्वत अविनाशी अतुल सुखों के सहवास में तजकर एक सुरुचिपूर्ण जीवन प्रारम्भ कर सकती हो।' सरोज मेरी बातों को बड़ी तन्मयता से सुन रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें जो शहद की बूँदों की तरह मधुर मालूम पड़ रही थीं, अपलक मुझे घूर रही थीं। मुझे ऐसा लगा जैसे हम लोग उस अति प्राचीन युग के प्राणी हैं जब आचार्य जंगलों में अपने शिष्य और शिष्यों की दुःख-सुख, जीवन-मरण और सत्य-असत्य की दार्शनिक शिक्षाएँ दिया करते थे। वही सुखद वातावरण, वहाँ भावों की दार्शनिकता वही सम्बन्धों की पवित्रता।

सरोज ताजा दम होकर खूब चली। अगला पड़ाव चोणासेन रहा दूसरे दिन प्रातःकाल हम लोग सिलोगी के लिए चल पड़े। मार्ग पैदल का था। बीहड़ रास्ते और सुनसान जङ्गलों में कुहरा भरा हुआ था जिससे हम लोग बड़ी कठि-नाई से चल पा रहे थे। सिलोगी पहुँचकर जहाँ हम लोग टिके वह स्थान बड़ा ही मनोरम था। यही मुझे आभास हुआ कि ऐसी यात्रा, ऐसा साथी और ऐसा दुर्लभ मनोरम स्थल किन्हीं पुण्य कर्मों के फलस्वरूप ही प्राप्त होते हैं। सामने हिमालय की पर्वत श्रेणियां थीं। दूर बहुत दूर धुन्ध के पारदर्शी मटमैले आवरण में छुपी हिमालय की उत्तुंग हिम श्रेणियां कभी-कभी एक नीले आवरण जैसी चीज के हटने पर अक्सर दिखलायी पड़ जातीं। हिमालय की उस रहस्यमयी

दुनिया और हमारे निवास स्थान के मध्य उद्दाम लहरों की भांति उठी हुई सात पर्वत श्रेणियां थीं। इन दृष्टिगत उपत्यकाओं पर नीचे-ऊपर छोटे-छोटे गांव बसे थे। पीछे के हिस्से में एक बहुत गहरी वादी थी। दाहिनी तरफ चीड़ का घना विस्तृत जङ्गल और बायीं तरफ स्कूल और उसके सेबों का बाग था। सरोज इस स्थान से बहुत प्रभावित हुई। उस पर तो जैसे इस स्थान का जादू ही चल गया। वह इतनी भावविभोर हो गयी कि मुझे बहुत बड़ा कलाकार प्रकृति पारखी समझ बैठी। उसने कहा, 'आप माने या न माने' किन्तु यह सत्य है कि आप पूर्व जन्म में निश्चय ही यहीं कहीं जन्मे और पले होंगे। इन पर्वतों के खिले वनफूल की तरह एकान्त में ही महके और इस मिट्टी में अपने सौन्दर्य निधि को बिखेरकर सो गये होंगे जिसे आज तक किसी ने नहीं जाना। मैं सरोज की इस भावुकता पर हंस पड़ा।

सरोज कलकत्ता विश्वविद्यालय की एम० बी० बी० एस० थी। उसके स्वर्गवासी पति उठती जवानी, पुष्ट सौन्दर्य और सुदर्शन व्यक्तित्व का प्रतिभाशाली विद्युत् अभियन्ता था। वह अपने घर का एक मात्र प्रकाश था। सरोज अपने पतिगृह के दाम्पत्य जीवन के सुखों को कुछ ही माह भोग पायी थी कि नियति का वह वज्रपात हुआ कि एक रात उसके पति की टरबाईन दुर्घटना में मृत्यु हो गयी। सरोज अपनी जीवन ज्योति के बुझ जाने पर अपने सास-श्वसुर के साथ अगम-अथाह अन्धकार में डूब गयी। सरोज चूंकि शिक्षित थी इसलिए वह धीरज-धर्म के अधीन अपनी जीवन नौका को साहस के साथ खेती रही। उत्तरा खण्ड में मुझसे साक्षात्कार के उपरान्त उसके अन्तर की घुटन और कुण्ठा समाप्त हो गयी थी। मेरे कहने पर वह गढ़वाल के उपेक्षित अन्तरालों में स्त्री रोग के लिए सेवाकार्य करने के लिए तैयार हो गयी थी। उसे गढ़वाल के पर्वतीय अन्तरालों में बिखर पड़े अलौकिक प्राकृतिक सौन्दर्य का दर्शनकर जीवन को सरल मधुर और प्रफुल्लित रखना भी था। मन की यह टीस यह ताप जिसे कहीं शान्त नहीं किया जा सकता है, उसे यहां ही आकर जनसेवा और प्रकृति के सुख-वैभव के बीच रहकर किया जा सकता है।

सरोज नित्य चार-पांच मील तक गांव-गांव घूमा करती। विभिन्न प्रकार की दवाइयां और इन्जेक्शन एक बड़े ही सुन्दर चमड़े के थैले में रखकर उसे अपने कन्धे में लटका लेती। परिचारिकाओं जैसा वस्त्र धारणकर वह बड़ा सुभग सुदर्शन मालूम पड़ती। जब कभी वह मुझे दूर पर्वतों पर जाते या गांव से लौटते पर्वतीय ढलान पर दिखाई पड़ती तो ऐसा लगता जैसे साक्षात् फ्लोरेन्स नाईटिंगेल मानव पीड़ाओं की मसीहा चली आ रही है। लौटकर सरोज थकान

से निढाल हो जाती किन्तु उसकी आँखों में सन्तोष और सुख का क्षीर-सागर हिलोरें मारता दिखलाई पड़ता। कभी-कभी तो वह अन्तर के आह्लाद से इतनी वेसुध हो जाती कि मुझे लगता जैसे उसके अन्तस्थल में सोया प्यार का देवता उसकी बातों, मुस्कराहटों और चितवन की चन्चलताओं के माध्यम से स्नेह की कामनाओं को आचरण में ला रहा हो।

एक रात जब चाँदनी अपने पूरे शबाब पर थी हम लोग चीड़ के घने जंगलों में जा पहुँचे। निचली ढलान पर चीड़ के सुकुमार नन्हें-नन्हें सघन पौधे उगे हुए थे। उनकी कचनार साखों पर चांदनी सो रही थी। शान्त एकदम एकान्त वातावरण जिसमें चाँदना के बरसने तक का आभास हो रहा था, हवा के मृदु हिलोरों से हिलते पौधे मस्ती में झूमती फिजा खिली चाँदनी को प्रातः काल का तड़का जान कर नीड़ों से बाहर आकर जबिजा बोलते हुए पक्षी ऐसा लग रहा था जैसे इस वातावरण में कहीं कोई छुपकर नृत्य कर रहा हो। सरोज मेरे आगे थी मैं उसके पीछे। हम लोग चढ़ते हुए पर्वत के ऊपरी भाग के सघन चीड़ के वृक्षों की ओर चले जा रहे थे। चीड़ की सघन वृक्षावलियों में चाँद एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया था जहाँ से उसकी ज्योत्स्ना दो कतारों में खड़े चीड़ के वृक्षों के मध्य चाँदनी की सड़क जैसा बना रही थी। हम लोग उसी रजत ज्योति मार्ग पर बैठ गये। सम्मुख सात पर्वतों के उस पार नगपति विशालका चार हिमानियाँ पारदर्शी धूमिल चांदनी में चमक रही थीं। उन हिम शिखरों पर बरसती चाँदनी उड़ती हुई गुलाल सी मालूम पड़ रही थी। हम लोगों के चारों तरफ निस्तब्धता के क्षणों में कण-कण तृण-तृण और पात-पात के अधरों से मधु हास के फूटने का आभास मिल रहा था। प्रकृति में यौवन था। पर्वतों पर चाँदनी बरस रही थी। दो प्यासी आत्माएँ पास-पास ही रहकर दूर बहुत दूर जैसे हिमालय के दूर अपरिचित एकान्त की हिम निर्जनता में भटक रही थी। हम हिम-मानव की तरह हिमालय की बरफानी चोटियों के आरोह-अवरोह में भटक रहे थे। इन लोगों के आस पास हिमालय के उसी निर्जन अन्तराल की खामोशी व्याप्त थी जो आज भी मानव चरण स्पर्श से अछूती है।

ऐसा लगा जैसे हिमालय की दूर दृष्टिगत हिमानियों में हम कहीं खो गये हैं। किसी अपरिचित अनजाने माहौल में। मुझे लगा एक बढ़ी ही शीतल जैसे सीधे हिमालय की बादियों से उठा हुआ बरफानी तूफान का झोंका मेरे अंतस्थल में प्रवेश कर रहा हो। मैं एकाएक सिहर गया। मैंने खामोशी को तोड़कर कहा "सरोज अहा गदेरे में आज तुमने स्नान करके जिस बृहदाकार पत्थर के

उस पार जाकर वस्त्र बदली थी उसी पत्थर पर देखो कोई 'डुग्गी' बजा रहा है। पठारी नदी के तरंगित जल-स्वर की तरह लहरती हुई उसी डुग्गी की आवाज शनैः शनैः बढ़ने लगी। डुग्गी द्रुत ताल में बजायी जाने लगी। ऐसा मालूम होता था जैसे उस वादी से हमें कोई पुकार रहा हो। गढ़वाल के इन उपेक्षित पहाड़ियों में भी जीवन है, यौवन है, सौन्दर्य है। इन पहाड़ी लोगों के वाद्यों में कितना आह्लाद, जादू, मस्ती और थिरकन है कि स्थिर पर्वत भी रक्स करते से मालूम पड़ते हैं। "चलो सरोज चलें" "अरे! तुम सो गयी क्या?" मैं खड़ा था सरोज बैठी-बैठी जैसे कि हिमालय के हिम शिखरों को तन्मयता से देख रही हो। आँखों में घूरती हुई नकारात्मक उत्तर में अपने सर को धीरे-धीरे हिला रही थी। [मैंने झुककर अपनी उंगलियों के फांस में सरोज की मरमरी उंगलियों को कसकर उसे रजत ज्योति मार्ग से यूँ उठा लिया जैसे कोई झुककर तालाब से कमल तोड़ लेता हो। पत्ते साखों पर झुक आये थे, चाँदनी प्रकृति से लिपटी हुई थी। चांद एक पर्वत के आगोश में समर्पित था जबकि वातावरण में मौन की वासना को उस पहाड़ी वाद्य का ढलता हुआ स्वर शिथिलकर रहा था।

गढ़वाल

गढ़वाल की एक कहावत है, पा० क्यूव' अर्थात् पोस्टिंग, प्रमोशन, पनिस्मेंट। इन्हीं तीन स्थितियों में सरकारी कर्मचारी गढ़वाल भेज दिये जाते हैं। परन्तु इसकी परिणति उन्हें स्वर्ग मुफ्त मिल जाने के समान होती है। क्योंकि यहाँ आकर हिमाच्छादित गगनचुम्बी पर्वत मालाओं की गोद में स्थित दिव्य तीर्थ-स्थल, प्राकृतिक वैभव और ऐतिहासिक सम्प्रदायों से परिपूर्ण भारत का यह उत्तराखंड 'गढ़वाल' सचमुच धरती का स्वर्ग ही प्रतीत होता है। यहाँ के कण-कण में प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास बोलता है। पग-पग पर पुराण-पृष्ठ खुलते हैं। यहाँ हिममंडित उत्तुंग पर्वत शिखरों पर भक्तों के भगवान् श्रीबदरीनाथ-केदारनाथ का पावन धाम है। यहाँ दूर तक फैली धवल रजत हिमानियों के वक्ष से प्रस्फुटित हो धरती पर अवतरित सततवाहनी परमपावन सुर-सरिता गंगा-जमुना का दिव्य उद्गम-स्रोत अलकनन्दा है। यहाँ स्थान स्थान पर ऋषि-मुनियों, महामनीषियों, तपस्वियों और जगद्गुरुओं की तपोभूमि है। यहाँ की ऊँची-नीची उपत्यकाओं के मध्य स्वर्गाश्रमों के तुल्य गुफाएँ, देव शिलाएँ और मठ-मन्दिर हैं। यहाँ की सुरम्य घाटियों, रमणीय पुष्पपूरित मैदान और सघन गहन मनमोहक बन प्रकृति की मनोरम क्रीड़ास्थली है। आज हम इसी उत्तराखंड, केदारखंड, तपोभूमि, देवभूमि, और धरती का स्वर्ग गढ़वाल की सैर करें।

'गढ़' शब्द में वाला' का प्रत्यय लगा है जिससे गढ़ बाहुल्य इस प्रदेश का नाम गढ़वाल पड़ा है। यहाँ के इतिहास में कुल ५2 गढ़ों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि यहाँ विभिन्न जातियाँ रहती हैं परन्तु इनकी एक ही संस्कृति और भाषा होने से यहाँ के निवासी एक ही परिवार के अंग मालूम पड़ते हैं। यहाँ की मुख्य भाषा गढ़वाली है जो बहुत कुछ हिन्दी से मिलती-जुलती है। यहाँ के निवासियों में अपनी भाषा-रीति-रिवाज, वंश-परम्परा और सामाजिक मान्यताओं के प्रति अटूट गहरी आस्था पायी जाती है। समस्त गढ़वाल को अब प्रशासनिक सुविधा के विचार से पौड़ी, चमोली और टिहरी जिलों से विभक्त कर दिया गया है। गढ़वाल के अन्तराल में प्रवेश के दो मुख्य द्वार हैं कोटद्वार और लक्ष्मणझूला। दोनों ही गढ़वाल के अन्तिम हिलस्टेशन हैं। हवड़ा-पठानकोट, देहरादून मुख्य रेल मार्ग पर नजिलालाद प्रसिद्ध रेलवे जंकशन पड़ता है जिससे एक लूप लाइन कोटद्वार को जाती है। नजिबावाद से कोटद्वार को राजकीय परिवहन-बस-सेवा भी सुलभ है जिसका दफ्तर रेलवे स्टेशन के समीप ही है।

आइए! कोटद्वार के प्रसिद्ध 'टूरिस्ट होटल में एक-एक कप चाय पी लें। फिर मालनी के तट पर स्थित महर्षि के आश्रम और खोह नदी के तट पर भक्तों की मनोकामना सिद्ध करने वाले 'सिद्धबली' के हृदय में समृद्ध कोटद्वार का भ्रमण करें। कोटद्वार गढ़वाल की तराई में स्थित है जहाँ एक समृद्ध व्यापारिक मण्डी है वहीं भाँवर का प्रशासन केन्द्र भी है। यहाँ से गढ़वाल के अन्तराल में ऊँची-नीची उपत्यकाओं के बीच बसे बड़े-छोटे गाँवों के लिए उनकी समस्त दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। कोटद्वार से जोशीमठ, श्री बदरीनाथ-केदारनाथ के लिए प्रसिद्ध गढ़वाल मोटर ओनर्स की सावारी गाड़ियाँ हर मौसम में चला करती हैं। कोटद्वार से लैण्सडाउन, श्रीनगर-चमेली के लिए राजकीय परिवहन बस सेवा भी सुलभ है? राजकीय परिवहन और गढ़वाल मोटर ओनर्स के दफ्तर आस-पास ही हैं। अब तो कोटद्वार से श्री बदरीनाथ-केदारनाथ के लिए टेक्सी की भी सुविधाएं उपलब्ध हैं? बस स्टैंड और रेलवे स्टेशन से झण्डा-चौक तक सड़कों के दोनों ओर पटेल-मार्ग तक बड़ी-बड़ी दुकान होटल रेस्ट्राँ और उनमें ग्राहकों के रेला-पेल के मध्य जन सागर-सा उमड़ता मालूम पड़ता है। खरीददारी में व्यस्त बहुत बड़ी संख्या में गढ़वाली सेना के जवान अनायास ही कहीं पास ही सैनिक छावनी होने का आभास करा देते हैं। लैन्सडाउन में गढ़वाल रेजिमेंट की सैनिक छावनी है। यहाँ पंजाब और स्टैट बैंक की शाखाएँ भी हैं। यहाँ से पास ही दिखलाई पड़ने वाले धुन्ध के

पारदर्शी आँचल में लपटे वृक्षों से ढके पहाड़ दूर से मौन निमन्त्रण देते से मालूम पड़ते हैं।

गढ़वाल के पर्वतीय भागों पर बस से यात्रा करना भी बड़े साहस का काम है। पग-पग पर भयङ्कर मोड़, रास्तों के अन्धे घुमावदार वक्र, चढ़ान पर आकाश छूने और ढलान पर पाताल जाने रास्तों पर पैंतालीस और पचास की गति से 'हूईन-हूईन' की ध्वनि करती भागती-दौड़ती सवारी गाड़ियाँ और मालवाहक ठेलों का कारवां एक अजीब समां बांध देता है जो देखने के ही काबिल होता है। गूमखाल से सप्तफूनी पौड़ी मार्ग पर जाते हुए जहां से उतार आरम्भ हो जाता है, सड़कों का पेचो खम देखते ही बनता है। अगर मौसम साफ हो तो गूमखालसे गिरिराज हिमालय की शृङ्खलाओं में प्रसिद्ध 'चौखम्भा' क्षितिज के नीले सागर से उठी प्रकाश पुन्ज की उद्दाम लहरों जैसा आकाश से प्रणय-संवाद में तल्लीन मालूम पड़ता है। सड़कों के दोनों ही ओर संकट एक तरफ शरीर से बाहर निकले सेठों के तोदों के आकार के घुमावदार पहाड़ और दूसरी तरफ गहरी खंदक खाइयाँ। उधर चलने-दौड़ने भागने के लिए नपे-तुले सकरे मार्ग और इधर समय की गति की भांति न थमने वाली मोटर चालकों की निरन्तर बाढ़ पर रहती स्पीड। थोड़ी असावधानी भयङ्कर दुर्घटना। डरिए नहीं! मृत्यु तो चटाई पर भी आ जाती है जहाँ से कहीं गिरने का प्रश्न ही नहीं उठता। भगवान का स्मरण कीजिए...

...और गढ़वाल की पद-यात्रा कीजिये। नवनीतसा प्रभात, सोन जूही-सी दोपहरी, गुलाल भरी सन्ध्या और निशिगन्धा-सी रात। स्वर्ग कहते जिसे हैं उसकी यह परिभाषा है। पर्वत की घाटियों से फैले हरे-भरे खेत स्वर्ग की सीढ़ियों से प्रतिस्पर्धा करते हैं। जाबजा खड़े बौराये आमों के पेड़। कहीं से नेबू के फूलों की सुगन्ध-पिचकारी छूटी तो रास्ते में मिली किसी गढ़वाली मादक सौन्दर्य की याद ताजा हो आयी। सुगन्ध का झोंका और रास्ते के मिलन, इनसे मत उलझा लोचन। सामने की ऊँची नीची उपत्यकाओं के शिखरों, ढालों पर घरौंदों की तरह छोटे घरों के गांव ऐसे लगते हैं जैसे किसी चित्रकार ने आड़ी-सीधी रेखाओं से किसी गांव को 'रेखाचित्र' बना दिया हो। गहन सघन मनमोहक बनाने में व्याप्त एकान्त की नीरवता को भङ्ग करता है चीड़-देवदारु के रेशमी बालों जैसा पत्तों के तार-तार को छेड़कर डमराज बजाता पवन। दूर किसी उचाट पहाड़ी ढालों पर जब शाम की सूर्यास्त के समय की ललाम लालिमा शिशु हम-सी फैल जाती है तो ऐसा लगता है जैसे श्याम ने राधा के मुख पर गुलाल पोत दिया हो।

यहाँ का जीवन कृषि प्रधान है। अन्न से लेकर सभी मौसम की साग-सब्जियाँ और फल मसाले आदि सभी कुछ यहाँ पर पैदा हो जाते हैं। इसीलिए यहाँ के लोग ज्यादा से ज्यादा स्वावलम्बी और आत्म-निर्भर हैं, और स्वभाव से स्वाभिमानी हैं। मर्द ज्यादातर सेना के सभी भागों में भर्ती होकर देश की सुरक्षा में योगदान देते हैं और स्त्रियाँ घरों पर सारी गृहस्थी सम्भालती हैं। इसलिए यहाँ स्त्रियों का बहुत अधिक आदर सम्मान और मान होता है। गढ़वाल की खुशहाली, सुख और समृद्धि का रहस्य गढ़वाली स्त्रियों की अथाह श्रमशक्ति और उनकी कार्यक्षमता में निहित है। यहाँ केवल मर्द खेतों में हल लगा दिया करता है बाकी समस्त खेती का कार्य स्त्रियाँ ही करती हैं। इसके अतिरिक्त जलाने के लिए जङ्गल से लकड़ी, पशुओं के लिए चारा लाना, घर भर के कपड़ों की सफाई करना, स्रोतों, नदियों से पानी भरना, जानवरों को चराना, उनकी देख-रेख करना, चूल्हा, चक्की, बाजार, हाट गरज सुबह से शाम तक वे अपनी घर-गृहस्थी में व्यस्त मिलेंगी। गढ़वाली सौन्दर्य और उनके रूप लावण्य की सीमा नहीं। सतरङ्गी परिधानों में सजी-धजी गढ़वाली रूप नाग-मणियां हंसती-बोलती पहाड़ों की टेढ़ी-मेढ़ी पगदण्डियों पर उतरती-चढ़ती दूर से ऐसी दिखायी पड़ती हैं जैसे वहाँ इन्द्रधनुष खिल गया हो। उनकी बोली नहीं भी समझ में आती तो भी उनके काव्यमय वार्तालापों में गीतों के माधुर्य-का-सा आनन्द आता है। निर्जन बीहड़ जङ्गलों के भयानक ढालों पर घास काटती हुई युवतियों के साहस को देखकर जैसे भयको भी पसीना आता सा मालूम पड़ता है। थोड़ी असावधानी जीवन का काल बन सकती है। तनिक पैर फिसला तो प्राणान्त। किन्तु वे निर्भय सजग झुकी हुई चूड़ियों की खनकती तालों पर दनादन घास काटती जाती हैं। नारी की पवित्रता और उसके सतीत्व की धवलता यहाँ की महानतम नैतिक वैभव सम्पदा है। यौवन लावण्य से अभिभूषित युवतियां निर्जन एकान्त जङ्गलों, पर्वतों, घाटियों, चरागाहों, खेतों और बाजारों में स्वच्छन्द रूप से विचरण करती हैं। कोई भय नहीं, किसी प्रकार की आशङ्का नहीं।

भारत के अन्य भागों के सभी प्रमुख त्योहार-दीपावली, दशहरा, होली, ईद और सोबरात भी मनाये जाते हैं। किन्तु यह एक विशिष्ट त्योहार गेंदका होता है जो प्रत्येक वर्ष 14 जनवरी से थल नदी और डाडामंडी में लगा करता हैं। गेंदका मेला क्यों लगा करता है इस सम्बन्ध में अनेक किमबदन्तियां प्रसिद्ध हैं किन्तु यह मेला 'उदयपुर और अजमेर' पट्टियों के बीच उनकी किसी पुरानी दुश्मनी की याद में लगा करता है। थल नदी में यह मेला अतिप्राचीन काल से

लगता चला आ रहा है। धीरे-धीरे यह अन्य स्थानों पर भी मेले के रूप में लगने लगा है। सेना दफ्तर और होटल से अवकाश लेकर विशेषकर इस अवसर पर प्रत्येक गढ़वाली घर आता है और बड़े उत्साह से इस त्योहार को मनाता है। प्रातःकाल से ही मिठाई और चाय-पकौड़ी की दुकानें लगने लगती हैं। बाहर से भी कुछ दुकानदार चूड़ियां और बिसातखाने की दुकान लेकर आ जाते हैं। गुब्बारे और पिपिहरी वाले तो बिना बुलाये मेहमान की तरह हर छोटे-बड़े मेलों में मौजूद रहते हैं। चर्खी और झूले भी लग जाते हैं। इस अवसर पर बच्चों के वस्त्र तो नवीन रहते ही हैं। गढ़वाली स्त्रियां भी चाहे वह बूढ़ी हों या जवान अपने विशिष्ट केश-विन्यास, परम्परागत वेश-भूषा और आभूषणों में अपना अलंकार करना नहीं भूलती। सुहागिन स्त्रियां और नवविवाहिता युवतियां गले में गुलूबन्द और नाक में विशेष प्रकार की बुलाक सगर्व धारण किये रहती हैं। चटकीले रङ्ग की रङ्ग-बिरङ्गी साड़ियों और आभूषणों में उनके रूप का प्राकृतिक सौन्दर्य इन बाहरी अलंकारों की चमक-दमक से होड़ करता प्रतीत होता है।

नदी के मध्य ढोलों पर चोट पड़ी, दमाम (तासे) तड़तड़ाये। ढोल दमाम की युद्ध-उत्तेजक धुनों से वातावरण में उत्साह और उमङ्ग की लहर दौड़ गयी। दो पार्टियों में दो पट्टियों के बूढ़े, नवजवान और लड़के एकत्र होने लगे। ढोल, तासों की धुनों पर पांव थिरकने लगे और शरीर झूमने लगा। विगत वर्ष की विजयी पार्टी के पास एक चमड़े का गेंद होता है जिसे उनकी पार्टी का एक व्यक्ति हवा में उछाल-उछाल कर दूसरी पार्टीवालों को ललकारता है। ढोल तासों की युद्धक-धुनों पर दोनों पार्टियां नाचती-गाती एक दूसरे के समीप होती जाती हैं। ढोल और तासे अधिक तीव्र और जोशीले ढंग से बजने लगे। दोनों पार्टियां आपस में संघर्षरत हो गयीं। गेंद प्राप्तकर अपनी विजय पताका गाड़ देने के लिए यह द्वन्द्वयुद्ध बहुत देर तक होता रहता है। शाम होते कोई न कोई पार्टी गेंद को अपने अधिकार में करने में सफल हो जाती है और उसकी विजय घोषितकर दी जाती है। धीरे-धीरे मेला उखड़ने लगता है। मेले में आये हुए लोग शाम के धुंधलके में थके-थके से गदेरों (नदी के रास्तों) और पर्वतीय पगडंडियों पर अपने-अपने घरों को लौटते दिखलायी पड़ते हैं। शाम का सुरमई अंधेरा धीरे-धीरे गहरा होता जाता है।

देवप्रयाग

जिस प्रकार मिलन के लिए विह्वल दो प्राण समीप आकर एक दूसरे को अंग भर लेने के लिए हर्ष युक्त वेग से आतुर होकर दौड़ते हैं, ठीक उसी प्रकार

देवप्रयाग के घाट के दाहिने और बायें बाजू से तीव्र गति से प्रवाहित होकर अपने विस्तृत उन्मुक्त पट को फैलाये ठुमकती भागीरथी और शान्त अलकनन्दा का जल जहाँ आकर परस्पर मिलता है, वहीं देवप्रयाग के संगम के संकुचित घाट पर पानी में पड़ी तीन-चार लम्बी-लम्बी लौह शृङ्खलाओं में से एक को पकड़े हुए पाँच पण्डों के साहस बंधाते वाक्यों और शारीरिक सहयोग के बावजूद एक धनाढ्य अधेड़ उम्र, गोरे, मोटे, पिलपि शरीर का व्यक्ति भय से कांपती टांगों से जल में डूबी प्रथम सीड़ी से दूसरी सीढ़ी उतरकर स्नान करने के लिए हास्यास्पद प्रयास कर रहा था। उसकी स्त्री जो उसी के समान रूप-रङ्ग आयु और शारीरिक पुष्टि की थी मरालियों जैसी बत्तीसियों के मध्य (जो सम्भवतः कृत्रिम ही रहे होंगे) अपने कीमती रेशमी साड़ी के आंचल का एक कोर दबाये पति की हास्यास्पद स्थिति को देखकर अधरों में मुस्करा रही थी ? समीप ही शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग के जिसके अत्यधिक तङ्ग-फाक चूड़ीदार पैंसजों के लिवास में उनकी अत्यधिक आधुनिक सुन्दर लड़की, 'यस पापा ! वन स्टैप मोर, वन स्टेप मोर, डोंट फीयर, यू आर ब्रेव ! आदि उत्साहवर्द्धक अंग्रेजी के वाक्य सम्बोधन से तालियां पीट-पीटकर, उन्मुक्त हंसी, हंस-हंसकर अपने पापा को प्रोत्साहित कर रही थी। सेठ के नहा लेने की प्रतीक्षा में पण्डों ने अन्य यात्रियों को सर्वथा अनुचित अनुरोध और तर्क से रोक रखा था।

प्रातःकाल सात बजे से मैं निरन्तर चल रहा था एक बजे बांडी चट्टी पर पहुँचा। अधिक चलने के कारण काफी थकान का अनुभव हो रहा था। इसलिए वहीं रुककर एक कप चाय पी फिर सिगरेट का एक गहरा कस लगाकर यात्रा आरम्भ कर दी। सूर्यास्त से पूर्व मैं व्यास चट्टी पहुँच गया। व्यासचट्टी पर बाबा काली कमली वाले की धर्मशाला में रात्रि के टिकाव के लिए रुका। ओढ़ने-बिछाने के लिए सभी कुछ मिल गया। एक चारपाई, बढ़िया कम्बल, दरी, बेडकवर और तकिया। मेरी चारपाई से कुछ दूर हटकर सात चारपाइयाँ और लगी हुई थीं। प्रत्येक चारपाई पर सुन्दर किस्म की हल्की कालीन बिछी हुई थी। पायतान कीमती शाल बड़े करीने से चपतकर रखे थे। सिरहाने खादी के उत्कृष्ट कवर की तकिया। सामान के समीप एक व्यक्ति बैठा चिलम पर सुल्फे का दम लगा रहा था। यह सब देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि यहाँ के स्थानीय लोग यह बतलाते हैं कि अब इस यात्रा मार्ग पर कोई रईस या अमीर आदमी या उसका परिवार इधर 25-30 वर्षों से नहीं आया। अब तो क्या अमीर या गरीब सभी लोग मोटर से बदरीनाथ केदारनाथ की यात्रा करते हैं। इस पद यात्रा, मार्ग पर अब केवल इक्के दुक्के फकीर या भिखमंगे ही यात्रा

करते हैं। कोने में बैठा व्यक्ति अब स्ठोव पर चाय तैयार कर रहा था। थोड़ी देर में एक परिवार के सात सदस्य कमरे में दाखिल हुए। सभी ने मुझे गौर से देखा। मैं चारपाई पर उठ बैठा और हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार करता रहा। उनमें जो बूढ़ी औरत थी उसने बड़े ही स्नेह भरे शब्दों में मुझे आशीर्वाद दिया।

धर्मशाला का चौकीदार सन मार्के की एक बड़ी लालटेन जलाकर कमरे की ताख पर रखकर चला गया। चाय बनकर तैयार हो गयी थी। नौकर सबको स्टेनलैस स्टील के सुन्दर-सुन्दर औसत दर्जे के गिलास में चाय बनाकर दे रहा था। मैंने देखा कि नौकर जब चाय लेकर बूढ़ी औरत के समीप आया तो उसने इशारे से कहा कि वह मुझे भी एक कप चाय दे आये। नौकर जब चाय लेकर मेरे पास आया तो मैंने शिष्टता पूर्वक धन्यवाद कहकर चाय लेने से इनकार कर दिया। मेरे इनकार करने पर बूढ़ी औरत ने मेरी तरफ मुखातिब होकर कहा, 'क्यों आप चाय नहीं पीते' मैंने विनयपूर्वक उत्तर दिया, बहुत कम पीता हूँ तो क्या हुआ, चाय पीते तो हैं लीजिए, पीजिए। बूढ़ी औरत के इसरार करने पर मैंने चाय ले ली। एक सिगरेट जलाकर एक कश सिगरेट का लगाया और साथ ही एक घोट चाय गले के नीचे उतारी। कमरे में पूर्ण खामोशी थी। सभी चाय पी रहे थे। केवल चाय की चुस्कियों की आवाज और उम्दा प्रकार की चाय के पत्ती की सुगन्ध समस्त कमरे में व्याप्त थी। बाहर गहरा अन्धेरा हो गया था। धर्मशाले से कुछ दूर गंगा का बहता हुआ जल हरहरा रहा था।

प्रातःकाल व्यास घाट पर स्नान करते समय मुझे इस परिवार का विस्तार से परिचय प्राप्त हुआ। ये लोग अग्रवाल थे और बङ्गाल से आये हुए थे। सभी लोग उच्च शिक्षा प्राप्त थे। माताजी के साथ उनके दो लड़के, दो बहुएँ और उनकी एक लड़की थी। ये लोग गंगा के विभिन्न रूपों का निकट से दर्शन प्राप्त करने के लिए ऋषिकेश से देवप्रयाग तक की पद यात्रा कर रहे थे। इस परिवार में दो व्यक्तियों का व्यक्तित्व काफी आकर्षक और प्रभावशाली था। एक माताजी का दूसरी उनकी लड़की सरोज का, सरोज बहुत ही सुन्दर एकहरे शरीर की युवती थी। आभूषण विहीन, मेकप के प्रसाधनों से उदासीन सादे किन्तु कीमती रेशमी वस्त्र में उसका रूप लावण्य अद्वितीय था। देखने में वह विश्वविद्यालय की छात्रा लगती थी। समस्त यात्रा के सुखद वातावरण तथा मनोहर दृश्यावलियों के मध्य जो बात सबसे अधिक खलती थी, वह थी सरोज की न टूटने वाली खामोशी और उसका विषाद युक्त गाम्भीर्य। वह हर समय उदास, बुझी, बुझी, खोई-खोई रहा करती। उसकी खामोश रोती-रीती आंखें सदा शून्य की

गहराई में डूबी रहतीं उसकी गुलाब की पंखड़ियों से अधरों पर किसी दुखान्त प्रणय कथा की वेदना भरी टीस का टेसू दहकता रहता ? उसका सारा मुख मण्डल अवसाद के गहरे धुन्ध से अच्छादित था ।

यात्रा सफल हो गयी । हम लोग बारह बजे देवप्रयाग पहुँच गये । देवप्रयाग के मन्दिर, घाट दूर से कबूतरखानों की भाँति लगने वाले उसके मनमोहक अनेक कमरों, बारजों और खिड़कियों वाले मकान बड़े रमणीय लगे । अलकनन्दा और भागीरथी के तट पर एक मात्र सकरी सड़क के दोनों ओर ऊपर नीचे घने बसे घर, दूकान काशी की गलियों की याद दिलाते हैं । रात को सभी थके होने के कारण जल्द ही सोने लगे । पण्डे का मकान अलकनन्दा के तट पर था । मकान का बारजा अलकनन्दा की ओर खुला था । अलकनन्दा शान्त गति से बहती हुई कुछ दूर आगे जाकर गर्जना करती भागीरथी से मिलती है । पीली-पीली, गंदली चांदनी, बृक्षों, पहाड़ियों, मकानों और अलकनन्दा के जल पर फैली थी । वातावरण की निःस्तब्धता को भागीरथी का हाहाकार भंग करता था । सरोज के ऊपर से लगने वाले शान्त जीवन में निश्चय ही कोई ऐसा हाहाकार था जो उसके हृदय को भीतर ही भीतर बुरी तरह साल रहा था । मैंने सरोज को देखा वह सो रही थी ।

मैं भी सोने का प्रयास कर रहा था, किन्तु नींद नहीं आ रही थी । समस्त यात्रा क्रमबद्ध होकर आँखों के सम्मुख चलचित्र की तरह गुजर रही थी । सिलांगों में देवप्रयाग तक की पहाड़ी और समतल यात्रा ! सिलोगी गढ़वाल का एक दर्शनीय स्थान है । चीड़, देवदार, बांझ, बुरास के सघन मनमोहक बन वहाँ की श्री शोभा के आकर्षक केन्द्र हैं । समुद्र तल से 6000 फुट की ऊँचाई पर स्थित सिलोगी काफी शान्त और ठंडा स्थान है । वहाँ से जब मैं चला था तो आकाश मेघाच्छादित था । सम्मुख उद्दाम लहरों की भांति उठी दस-ग्यारह पर्वत श्रेणियों के उस पार से, व्योम में समाविष्ट, जल-धरती के मध्य मेरुदण्ड की भाँति अडिग शाश्वत के प्रतीक हिमालय से बर्फीली हवाएँ वेग से आ रही थीं समस्त दृष्टिगत उपत्यकाएँ वायु के गहरे धुन्ध में लिपट कर श्याम वर्ण की हो गयी थीं । पर्वत की परिक्रमा करती मेरी वह राह जिस पर मैं यात्रा कर रहा था दूर तक दिखलायी पड़ रही थी ।

तीन घंटे तक निरन्तर उतार-चढ़ाव की दुर्गम पहाड़ी पगडंडियों पर चलता हुआ मैं एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ से प्रथम बार गंगा का दर्शन हुआ यहाँ से गंगा अत्यधिक गहराई में चौथ के चन्द्रमा के समान काई सी जमी मालूम

पड़ती थी। जहाँ से मैंने गंगा का दर्शन किया था वहां से गंगा से लगे प्राचीन बदरीनाथ केदारनाथ पथ-यात्रा-मार्ग तक पहुँचने के लिए एक बहुत ही भयंकर उतार-पार करनी थी। अन्य यात्रियों की तरह मैं भी बहुत सावधानी, साहस और कहीं-कहीं पर भय से कांपती टांगों से पार करता गया। निरन्तर डेढ़ घंटे तक मेरे चलने की गति ठीक वैसी ही थी जैसे मैं एक ही स्थान पर 'लेफ्ट-राइट' कर रहा हूँ। ज्यों-ज्यों मैं नीचे की ओर उतरता जाता गंगा का पाट फैलता जाता। फिर उसमें गति अनुभव हुई। उसके काफी समीप हो जाने पर जल के बहने की आवाज भी सुनायी पड़ी। अब जल में ढेर सारी गज-गज भर की आड़ी-सीधी रेखाएँ दिखलायी पड़ीं। कांडीचट्टी के पास मैं पद-यात्रा मार्ग पर उतर गया। यहाँ से गंगा का निर्मल चञ्चल जल स्पष्ट दिखलायी पड़ने लगा। दूर से दिखती आड़ी-सीधी रेखाएँ गंगा में बहती इमारती लकड़ियाँ थीं। ये लकड़ियाँ अलकनन्दा और भागीरथी के जल-प्रवाह में टिहरी और चमोली के जंगली भागों से काटकर बहा दी जाती हैं। लकड़ियों पर विभिन्न ठेकेदारों के अपने विशिष्ट चिह्न या नम्बर या दोनों खुदे रहते हैं। उसी के अनुसार सभी ठीकेदार अपनी-अपनी लकड़ियाँ हरिद्वार में एकत्र कर लेते हैं।

कांडी से देवप्रयाग तक गंगा के अनेक रूप देखने को मिले। पग-पग पर गंगा के दर्शन से एक प्रकार के विलक्षण आनन्द की अन्तरानुभूति होती थी। गंगा की यही विशिष्टता अति प्राचीन काल से बदरीनाथ, केदारनाथ को जाने-वाले असंख्य नर-नारियों की पद-यात्रा मार्ग में पड़ने वाले भयानक जङ्गलों, दुर्गम, बीहड़ रास्तों, लोमहर्षक खंदकों को आनन्द, हर्ष, आह्लाद में बदलकर उनकी यात्रा को सुखद, सरल, सरस बनाती रही हैं। कहीं गंगा वादियों से निकलती है कहीं घाटी के चौड़े पाट में फैल कर वृहद् कुण्ड में परिवर्तित हो जाती है। कहीं चन्द्राकार करवट बदलती मालूम पड़ती है। कहीं ऐसा हाहाकार कि हृदय कम्पित हो उठे। कहीं इस कदर शान्त कि उसके अस्तित्व का ही आभास न हो। उसके सौम्य रौद्र, तरल-सरल, कलकल-छलछल, मंथर, गुरुतर वेग को समीप से देखने पर जिस सुखद आनन्द-आह्लाद की अनुभूति होती है वह अवर्णनीय है। आधुनिक युग में मोटर-यात्रा मार्ग से श्री बदरीनाथ की यात्रा कर आना साधारण मेला देख आने से अधिक कुछ नहीं है। पद-यात्रा मार्ग में कष्टसाध्य जंगलों और पर्वतीय मार्गों से गंगा के दर्शन करते हुए दुःखों के बीच जिस सुख की प्राप्ति होती है, उससे मोटर यात्रा मार्ग से तीर्थ करने वाले यात्री पूर्णतया वंचित रह जाते हैं। जो आनन्द साहस भरी पद-यात्रा मार्ग में है वह मोटर की जोखम भरी यात्रा में नहीं है।

मोटर मार्ग खुल जाने के उपरान्त प्राचीन पद-यात्रा मार्ग, स्थान-स्थान पर बनी चट्टियों और मार्ग से पड़ने वाली नदियों पर बने पुलों की जो उपेक्षा और क्षति हुई है उसे देखकर बड़ा दुःख हुआ। केवल बाबा काली कमली वाले की धर्मशालाओं को छोड़कर लगभग 30 वर्ष से पड़ी अन्य धर्मशालाएँ समय हवा, पानी और मनुष्य के हाथों उजड़ कर खण्डहर हो गयी हैं। जब मोटर मार्ग नहीं खुला था तो यात्रा-काल में इस पद-यात्रा-मार्ग पर रात-दिन यात्री चला करते थे। चट्टियाँ और धर्मशाले खचाखच भरे रहते थे। औषधि-उपचार की पूर्ण व्यवस्था के बावजूद चट्टियों, धर्मशालाओं पर 20-25 व्यक्तियों का नित्य मर जाना साधारण बात थी। आज समय की गति के साथ-साथ सब कुछ निश्चय ही बदल गया है। जहाँ धर्म का ह्रास हुआ है, वही धर्म के दुर्ग अपनी अक्षुण्ण शाश्वतता की स्थिति में कायम भी है। ऋषिकेश के बाबा कालीकमली वाले की धार्मिक संस्थाएँ, धर्मशालाएँ, औषधालय, लंगरखाने हर समय समस्त उत्तरी खण्ड के धार्मिक मार्गों के तीर्थयात्रियों की बहुमूल्य सेवा करते हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस संस्था की ओर से उन दुर्गम निर्जन हिमानियों में भी तीर्थ यात्रियों को सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, जहाँ मनुष्य का दर्शन दुर्लभ होता है। इस धर्मोपकारी संस्था के संस्थापक स्वर्गीय स्वामी विशुद्धानन्दजी परिव्राजक थे, जो स्वयम एक काली कमली धारण किये रहते थे। इसी कारण वे सर्वत्र काली कमलीवाले के नाम से प्रसिद्ध हैं।

देवप्रयाग का घाट बहुत ही संकुचित और संकीर्ण है। घाट के दाहिने बाजू पर हाहाकार करता भागीरथी का वेगवान जल बहता है, बायें बाजू से शान्त गम्भीर किन्तु बिन्दु-बिन्दु में तूफानी आवेग लिए हुए अलकनन्दा बहती है। मई-जून-जुलाई में पर्वतों पर बर्फ गलने के कारण अलकनन्दा के जल में बाढ़ आ जाती है जिससे इन महीनों में समस्त घाट पर केवल अलकनन्दा का ही जल निस्तारित होता है। अलकनन्दा का जल समस्त घाट पर से होता हुआ वेग से आगे को बढ़ता है और घाट की तरफ आते हुए भागीरथी के जल को ढकेलता हुआ घाट से काफी आगे ले जाकर खिल्त-भिल्त होता है। इस कारण उपर्युक्त महीनों में घाट पर वास्तविक संगम नहीं हो पाता है। ठंड के महीनों में जबकि पर्वतों पर बर्फ जम जाने के कारण अलकनन्दा का जल घट जाता है, घाट पर वास्तविक संगम बन जाता है। घाट पर बहुत बड़ी-बड़ी लोह शृङ्खलाएँ जल में पड़ी रहती हैं। जिन्हें पकड़ कर कोई बहुत ही साहसी और शक्तिशाली व्यक्ति ही कुछ क्षण के लिए एक दो सीढ़ी नीचे उतरकर 'गोरइया स्नान' कर सकता है। अधिकांश नर-नारी अलकनन्दा और भागीरथी का जल बाल्टी में भरकर

या दोनों स्थानों पर जाकर लोटे से पानी उगाह-उगाह कर ही स्नान करते हैं।

देवप्रयाग में ही श्रीराम अपने तीनों भाई भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण को क्रमशः ऋषिकेश मुनि की रेती और लक्ष्मण झूले में छोड़कर अखण्ड तप करने आ गये थे। गढ़वाल के पंच-प्रयागों में देवप्रयाग अत्यन्त उच्चकोटि का तीर्थस्थल और संगम है। इसके अतिरिक्त अन्य चार प्रयाग और हैं, मन्दाकिनी और अलकनन्दा के संगम पर 'रुद्रप्रयाग' पिंजरी और अलकनन्दा के संगम पर 'कर्ण-प्रयाग', मन्दाकिनी और अलकनन्दा के संगम पर 'नन्दप्रयाग'। विष्णु गङ्गा और अलकनन्दा के संगम पर 'विष्णु प्रयाग'। देवप्रयाग में स्नान कर लेने के उपरांत जहाँ जन्म-जन्मान्तर के पाप-कलुष धुल जाते हैं, वहीं देवप्रयाग में आकर किया गया पाप, दुष्कर्म किसी जन्म में भी नहीं मिटता।

सरोज अन्तःस्थल में वेदना, मस्तिष्क में तूफान और आखों में आहत दर्दभरी बदली लिए देवप्रयाग के संगम पर उमड़ी सी प्रतीत होती थी। उसके भाइयों और भावजों के धोती-साड़ी के किनारों को परस्पर बाँधकर पण्डित अलकनन्दा भागीरथी और गुप्त सरस्वती के जल को उन पर छिड़क-छिड़क कर वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ उनके शाश्वत सुख की कामना कर रहा था। सरोज और उनकी माँ यह सब कुछ आहत मौन के साथ निर्निमेष देख रही थीं। पण्डित ने सरोज को संकेत से .संगम के समीप बुलवाया। माताजी सरोज की पीठ पर हाँथ रखकर उसे संगम के समीप सीढ़ी तक ले गयीं। सरोज निढाल-सी संगम की सीढ़ी पर बैठ गयी घुटनों के बीच मुंह छिपाकर। वेदना का आहत दर्द ज्वालामुखी बनकर फूट पड़ा? ऐसा लगा भागीरथी का हाहाकार और अलखनन्दा का तूफानी आवेग क्षण भर को रुक कर मौन पड़ गया। थम गया।

हरी की पैड़ी की वह मनमोहक सन्ध्या

सरोज को मैंने दूर से देखा, उसको पहचाना उसके दुख को जानकर उसके समीप हुआ उसकी आहत आत्मा की मूक वेदना से पीड़ित होकर। वैभव और सम्पन्नता के आमोद-प्रमोद और सभ्य सुरुचिपूर्ण परिवार के सुखद वातावरण में पली सरोज जब यौवन के अल्हड़पन में ही विधवा होकर अपने जीवन का वास्तविक सुख खो बैठी तो उसी रोज से उसके चमन जैसे जीवन में ऐसी खिजा आ गयी जिसके बाद बहार आयी ही नहीं। जिसके पात-फूल झड़ गये हों, जिसकी साखें जल गयी हों, सरोज का जीवन एक ऐसा ही ठूंठा वृक्ष था। सरोज अलकनन्दा भागीरथी के पवित्र संगम पर स्नान कर भागीरथी के तटपर बने

एक चबूतरे पर बैठ गयी। एकदम शुभ्र रेशमी साड़ी में उसके रूप लावण्य की वैधव्यता उसके मुख-दर्पण से परिलक्षित हो रही थी। थोड़ी देर को ऐसा लगा जैसे सरोज ही देवप्रयाग है। उसके अन्दर भी अलकनन्दा जैसी शान्ति और भागीरथी जैसा हाहाकार है। मैंने सोचा जो भी जाने-अनजाने सरोज की असाध्य पीड़ा में शरीक है उसके भी जन्म-जन्मान्तर के पाप कलुष निश्चय ही धुल जायेंगे जैसा कि देवप्रयाग में आकर स्नान करने से, वेदों में लिखा है मनुष्य के पाप धुल जाया करते हैं।

देवप्रयाग में शाम के अन्तिम 'गेट' के पहुँचने और प्रातःकाल उनके छूटने के समय मनुष्यों-यन्त्रों के कोलाहल युक्त वातावरण के मध्य लोगों को अपनी-अपनी गाड़ियों की ओर दौड़ते-भागते झपटते देखकर एक विलक्षण हर्ष-आनन्द की अनुभूति होती है जिसका अनुभव एक तटस्थ द्रष्टा ही कर सकता है। यहाँ विशाल भारत के रूप-रङ्ग भेष-भूषा का निमेष में ही दर्शन हो जाता है। नागरिक आधुनिकता और ग्रामीण आंचलिकता के विरोधाभास का बोध स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। जहाँ चुस्त वस्त्रों में उन्नत मुखत्र और पुष्ट भाग दिखलाई पड़ते हैं, वहीं शिथिल परिधानों में लज्जाशील विनत माथ। सबके अन्त में हम-लोगों की टैक्सी रवाना हुई। हम लोगों की टैक्सी के आगे-आगे सवारी गाड़ियाँ। ठेला गाड़ी मोटर जीपों का एक विशाल कारवां पहाड़ी की परिक्रमा करता हुआ ऋषिकेश को जा रहा था। देवप्रयाग से ऋषिकेश और ऋषिकेश से हरिद्वार हमलोग उसी दिन शाम को पहुँच गये।

देवप्रयाग में मैंने सरोज के परिवार के सम्मुख हरि की पैड़ी की मधुमय सन्ध्या के ललित सौन्दर्य का जो चित्र प्रस्तुत किया था सरोज उस हरि की पैड़ी की सन्ध्या को देखने के लिए विकल हो उठी थी। सरोज के भाई और भाभियां तो श्रीनगर को चल दी और मैं सरोज और माताजी को साथ लेकर हरिद्वार जा पहुँचा। ऋषिकेश से देवप्रयाग तक गंगा के विभिन्न रूपों का निकट से दर्शन करने के उपरान्त देवप्रयाग के संगम पर स्नान कर सरोज एक विलक्षण ताजगी अनुभव करने लगी थी। हरिद्वार पहुँचकर मैंने उससे पूछा, 'सरोज' ; हरिद्वार तुम्हें कैसा लग रहा है, तो उसने बड़े ही मृदुल अंदाज में कहा, 'वैसा ही जैसे कि मालवीय ब्रिज से बरखा में धुले काशी के घाट और उत्तुंग मकान ताजे खिले कमल की शांति स्निग्ध लगते हैं। काशी का जिक्र आने पर मैंने सरोज से सुबहे बनारस और शामे अवध की रंगीनियों का तजकिरा किया और यह बतलाया कि हरि की पैड़ी की सन्ध्या अछूता अध्याय है जिसे मेरी अनुभूतियों ने लिखा

है। जिसे मेरी जिन्दगी की अनगिनत शामों ने पढ़ा है। मैंने उससे बताया कि मैंने अपनी जिन्दगी की कितनी ही शाम हरि की पैड़ी पर गुजारी है। यह मेरी जिन्दगी का प्रिय शगल रहा है और इसपर मैंने एक प्रकार से शोध कार्य किया है। मेरी भावुकता पर व्यंग करती हुई सरोज बोली, 'अच्छा फिर तो आपको इस विषय पर डाक्ट्रेट की डिगरी मिलनी चाहिये।' सरोज के इस अप्रत्याशित विनोद पर मैं जोर से हंस पड़ा।

सरोज को मैंने बताया कि हरिद्वार की सुबह और हरि की पैड़ी की सन्ध्या को लोग उस समय-काल से देखते चले आ रहे हैं जब से कि हमारे ऋषि-मुनियों ने इस स्थान की खोज की है। किन्तु जो सुख-आनन्द यहाँ मैंने अनुभव किये, प्राप्त किये वे अविस्मरणीय हैं। उस सुख-आनन्द का जो सुरक्षित कोष-भण्डार मेरे पास है वह किसी भी साहित्य या मानव-स्मृति में अलभ्य है। निश्चय ही हरिद्वार, ऋषिकेश, बद्रीनाथ-केदारनाथ जैसे स्थानों के अन्वेषक उन पश्चिमी अविष्कारों से रंचमात्र भी कम नहीं है जिन्होंने भौतिक सुख के लिए अणु का आविष्कार किया है या आज अन्तरिक्ष की खोज में तल्लीन हैं। हमारी सभ्यता और संस्कृति के ये केन्द्र संसार में शाश्वत सुखों के स्रोत हैं। बिड़ला टावर के समीप हरिकी पैड़ी की प्रथम सीढ़ी पर हमलोग अपने पैरों को घुट्टी से ऊपर पानी में डुबोये बैठे थे। हमलोगों के यहाँ पहुँचने से पहले गंगा की सन्ध्या आरती हो चुकी थी। अधिकांश लोग हरि की पैड़ी के घाट से हटकर सुभाष चबूतरे पर जो हरि की पैड़ी के पुल उस पार है सिमटकर वहाँ हो रहे बिभिन्न कथा-भजन मण्डलियों में सम्मिलित हो गये थे।

हरिद्वार का पूर्णानन्द इसी समय है जब उसका विभिन्न उपर्युक्त स्थानों से अवलोकन किया जाये। जहाँ हरि की पैड़ी की सन्ध्या नैसर्गिक सौन्दर्य से युक्त रहा करती हैं, वहीं हरिद्वार की सुबह भी कम सुहावनी नहीं होती। प्रातःकाल उगते हुए सूर्य का दर्शन हरिद्वार में कुछ विशिष्ट स्थानों से ही किया जा सकता है। दुर्भाग्यवश ये स्थान हरिद्वार पहुंचे सामान्य जनों की पहुँच के बाहर हैं। यूँ तो हरिद्वार के जनसाधारण के लिए धर्मशालाओं की कमी नहीं है जो हरि की पैड़ी को जाने वाले मुख्य-मार्ग के दोनों ओर स्थापित हैं। इन धर्मशालाओं में तीर्थयात्रियों की बहुलता के साथ-साथ प्रत्येक कमरों की सुराखों-दरवाजों में 'चीलरों और खटमलों' का भी पुस्तदरपुस्त से कब्जा स्थापित चला आ रहा है। इनके अतिरिक्त जो विशिष्ट धर्मशाले हैं वे पूंजीपतियों के हैं या विभिन्न मतावलम्बियों के इस प्रकार के धर्मशाले आधुनिक सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण

किसी प्रासाद से कम नहीं हैं। ये धर्मशाले मुख्य रूप से स्टेशन के प्रवेश द्वार के ठीक सामने जाने वाली गली में तथा इसके आगे जाकर दाये-बायें बाजू पर स्थित हैं। इनमें जो गंगा के तट पर हैं, उनके घाट भी हैं। इन विशिष्ट धर्मशालाओं में एक गुजराती धर्मशाला भी है जिनमें मुझे प्रवेश पाने का सुअवसर प्राप्त हो चुका है। यहाँ से मैं टिहरी के आच्छादित उत्तुंग पर्वत के उस पार से प्रातःकाल के उगते हुए सूर्य की प्रथम किरणों को कितनी ही बार अपने खुशियों के दामन में समेट चुका हूँ।

हरिद्वार की अक्टूबर की ठंड जैसे प्रथम परिचय में अपरिचित कोमल हाथों की अंगुलियों का स्पर्श अंग-अंग में ऐसी कम्पन-सिहरन जो तन की आत्मा की गहराइयों तक उतरकर उसे एक अज्ञात सुख-आनन्द से परिचित कराती हो! मैं सरोज और माताजी को साथ लिए ब्रह्ममुहूर्त में गुजराती धर्मशाला जा पहुँचा। दरवाजे पर दस्तक दी। चौकीदार ने दरवाजा खोलकर मुझे देखा। हाथ जोड़कर अभिवादन कर स्वागत किया। हमलोग उस प्रासाद के निचले भाग से घाट पर गये। सोलह-सत्तरह सीढ़ियां पानी के अन्दर थीं और लगभग उतनी ही ऊपर। कुछ देर बाद आकाश अपने मुख से स्याह काश्मीरी शाल हटाने लगा। वातावरण में पूर्ण निस्तब्धता थी पूर्व की ओर गगन दुधिया होने लगा। एक सीमित दायरे में सुभग आभा सी फैल गयी। सरोज और माता जी नहाने के व्यसन में लगी थीं। घाट की सीढ़ियों पर होकर बहता हुआ जल शान्त किन्तु गतिमय स्वर में प्रवाहित हो रहा था। दूर से आती हुई घड़ियालों की ध्वनि वातावरण में गूंज रही थी। श्रद्धालु भक्तों के मिले-जुले स्वर हरि की पैड़ी की दिशा से आकर सहगान रूप कानों में रस घोल रहे थे। सरोज ने शरीर से लिपटे शाल को उतार कर रख दिया। सीढ़ियां उतरकर पानी की ओर जाने लगी। माताजी तो पानी में दो या तीन सीढ़ियां उतरकर स्नानकर रही थीं। सरोज उनसे और आगे बढ़ती गयी। पानी सरोज के कमर से ऊपर हो गया। ऐसे दुर्लभ स्नान का दर्शन मैंने जीवन में प्रथम बार किया। न कोई मन्त्र न वन्दना न स्वर मौन ही स्वर था। भाव ही वाणी! हिलते जलमें सरोज की कांपती छाया उसकी आत्मा में छाया सघन अन्धकार का प्रतिबिम्ब थी। शायद अन्दर का अन्धकार धुल जाय, वह गर्दन भर पानी में बहुत देर तक बैठी रही। मुख पूरब की ओर था। उगते हुए सूर्य को जल अर्पण कर वह नीर-भरी बदली की भांति जल से उभड़ती हुई घाट के चबूतरे पर आ गयी। अङ्ग-अङ्ग से नीर बह रहा था किन्तु रुदन का विकल्प स्वर मौन था। शनैः शनैः सूर्य की स्निग्ध

आभा टिहरी के पर्वतों के उस पार फैल जाती है। दृष्टिगत उपत्काएँ-वन अधरों पर मुस्कान लिए जाग पड़ते हैं। कुछ देर बाद कोई अदृश्य तूलिका से गज भर चौड़ी मधुर ललाम शीतल आरक्त-रेखा टिहरी के क्षितिज-ललाट पर खींच देता है। ठीक वैसी ही जैसी बरखा ऋतु में पश्चिम दिशा में पर्वताकार श्याम वर्ण के घने बादलों के उस पार डूबे सूर्य की जर्द रोशनी फैल जाया करती है। धीरे-धीरे सूर्य टिहरी के गगनांगन में सूर्यमुखी पुष्प की भांति खिला मालूम पड़ता है। कुछ देर बाद उसकी ज्योति बढ़कर आरती थाल की भाँति चमकने लगती है। फिर पर्वतों की चोटियों को सूर्य अपनी स्वर्ण रश्मियों से चूमता हुआ पश्चिम यात्रा के लिए अपने नेत्र को फैलाकर दमकने लगता है। सरोज निर्निमेष सूर्य के बदलते रूप को देख रही थी। माता जी घुटने टेके हुए माथा टेक-टेक कर सूर्य प्रणाम कर रही थीं।

जब हमलोग गुजराती धर्मशाले से चले तो माताजी बहुत अधिक प्रसन्न दीख रही थीं। वह भीतर ही भीतर आज के स्नान और सूर्य दर्शन से भाव-विह्वल हो गद्‌गद् हो उठी थीं। सरोज को देखने से ऐसा लगा जैसे मेरे प्रति उसके एक प्रकार के अपनत्व का स्नेह उसकी रिक्त आँखों में भर गया हो और उसकी बड़ी-बड़ी आंखें जो अवसाद से अक्सर बुझी-बुझी सी लगा करती थीं, आज एक आबदार बड़े मूंगे की भाँति चमक रही थीं। उसने बहुत ही भाव-विह्वल होकर कहा—"जीवन में ऐसे दुर्लभ सुखद क्षण तो सौभाग्यशालियों को ही प्राप्त हुआ करते हैं।" किन्तु वह इन वाक्यों के कहते ही एक अपराध भावना से सहम गयी। ऐसा लगा जैसे उसने अपनी विधवा माँग में अपने ही हाथ की अंगुलियों से सुहाग डाल लिया। मैं सब कुछ समझ गया और आगे बढ़कर उसके टूटते हुए दिल को सहारा दिया, 'सरोज ! स्वमेव उपजे सुखों की अनुभूति कितनी बलवती हुआ करती है। विषाद के घिनौने आवरण को अपने ऊपर वह अधिक दिनों तक सहन नहीं कर सकती। अन्ततः वह उसे अपनी आत्मा पर अनावश्यक भार समझकर नोच फेंकती है। विचारों में व्यतिक्रम पैदा करने के लिए मैंने कहा. 'हरिद्वार में केवल दो ही समय बाहर निकलना चाहिये। प्रातः काल और सन्ध्या समय। इसके मध्य का समय सामान्यतः हर क्षेत्र में व्याव-सायिक रहता है।

शाम के समय हमलोग सुभाष चबूतरे से लगे पुल से उस पार जा पहुँचे। उस पार एक खुला मैदान है। मैदान के समाप्त होने पर एक पक्का घाट बना है। गंगा पर बाँध बन जाने के कारण गंगा के इस भाग में बहुत ही कम जल

जाता है। इस समय तो केवल बड़े-बड़े पत्थरों के मध्य जल केवल रसता हुआ बह रहा था। यह स्थान भी काफी एकान्त, शान्त और मनोरम है। यहाँ के वातावरण और इसके कण-कण से दार्शनिकता की गन्ध फूटती है। सर्वत्र एक गाम्भीर्य मौन जैसे कोई साधना में तल्लीन बैठा हो। मैंने सरोज से कहा 'यह विस्तीर्ण भू-खण्ड हरिद्वार का दर्शन विभाग है, तो वह अधरों में मुस्करा दी। यहाँ अक्सर बाहर से आये विद्वानों के प्रवचन हुआ करते हैं या धार्मिक शिविर लगा करते हैं। हमलोग जब घाट पर खड़े थे तो सूर्य पश्चिम के गगनांगन में सोना बिखेर रहा था। शनैः शनैः पश्चिम के क्षितिज-सागर में सूरज की कस्ती डूबती गयी। पूर्व में सन्ध्या की झुटपुट और पक्षियों की टी० पी० टुट-टुट सुनाई पड़ने लगी। हमलोग शीघ्र ही हरि की पैड़ी पर आ पहुँचे। बिड़ला टावर का चबूतरा भक्तों और सैलानियों से खचाखच भर गया था। सर्वत्र युगल जोड़े, टोलियां, देश के विभिन्न भागों से आये लोग। यहाँ अपने को स्वर्ग में पहुँच गये, ऐसा आभास करने लगते हैं। हरिकी पैड़ी पर बने पुलों की रेलिंगों पर बैठे हंसमुख सुदर्शन चेहरे बड़े ही नैनाभिराम लगते हैं। लगभग ढेढ़ फर्लाङ्ग लम्बा बिड़ला टावर का चबूतरा जल के दो किनारों के मध्य स्थिर डेक की भाँति मालूम पड़ता है। इस डेकपर अधरों पर मुस्कराते युगल जोड़े मधुर वार्तालाप। दो-दो कदम चलकर रुक जाने की अदा। ऐसा कोलाहल जिसमें माधुर्य फूट रहा हो। पूर्व दिशा से आती सुरमई सन्ध्या का सुखद आभास लोगों के मन-अंग को गुदगुदाने लगता है। हरिकी पैड़ी का समस्त वातावरण सन्ध्या-गमन पर खुशियों के सागर में डूब जाता है। बिड़ला टावर के दाहिनी तरफ सीढ़ियों पर बैठे लोग जल में गंगा आरती के औसत दर्जे के दोनों में, जो गुलाब गेंदा और अन्य वनफूलों की पंखुड़ियों से भरा रहता है, छोटे-छोटे दिये जलाकर गगा जल में प्रवाहित करते हैं। गंगा में अर्पित ये असंख्य दिये जब जल प्रवाह में हिलते हुए बहते हैं तो ऐसा लगता है जैसे आकाश इस दृश्य पर मोहित होकर सितारे लुटा रहा हो। इस प्रकार वे दीपदान हरिकी पैड़ी पर जल में कम अर्पित किये जाते हैं, क्योंकि वहाँ जल-प्रवाह तीव्र होता है। सरोज हरिकी पैड़ी पर बैठी जल में अंगुलियां हिला रही थी। उसे हरिकी पैड़ी की यह सुहावनी सन्ध्या एक जोगन मात्र थी जो टिहरी के वन पर्वतों के कोने—अन्तरालों से घूमकर हरिकी पैड़ी पर थककर बैठ गयी है।

हरिकी पैड़ी के घाट पर गंगा मन्दिर की सीढ़ियों पर घड़ियाल-शंख बजने लगे। घंटियां टुनटुनाने लगीं। नर-नारियों का समूह सिमटने लगा। दो पण्डित दो दीप के लम्बे आरती पात्र में बने हुए कई दीपों को जलाकर घुमाने लगे। दो

व्यक्ति अंजुलियों से हरिकी पैड़ी का जल उठा-उठा कर उस आरती-पात्र पर डालने लगे। दीपों की ज्योति प्रखर होती गयी। यहाँ तक कि बारम्बार जल डालते रहने के उपरान्त वह आरती-पात्र एक ज्योति पुन्ज में परिवर्तित हो गया। पानी डालने की क्रिया बन्दकर देने के बाद दीप-पात्र अपने सामान्य प्रकाश में जलने लगता है। इस प्रकार नित्य वहाँ गंगा सन्ध्या आरती हुआ करती है जो बड़े ही दिव्य-भव्य और भाव-भक्ति से ओत-प्रोत हुआ करती है। ट्यूब लाइट की ज्योति में हरिकी पैड़ी भींगी-भींगी, भीनी-भीनी झिलमिलाती रात में डूब जाती है। सरोज, मैं और माताजी हरिकी पैड़ी से उठकर चले। माताजी कीर्तन में सम्मिलित होने चली गयीं और हम लोग पुल की रेलिंग पकड़कर झुके हुए पानी में किल्लोल करती मछलियों को देखने लगे। हमलोगों की छाया का अग्रिम भाग हिलते हुए जलपर परस्पर मिलकर कांप रहा था दूर जल पर हिलते हुए युगल जोड़े की छाया को हमदोनों ने एक दूसरे से दृष्टि बचाकर देखा। नजरें वहाँ से हटकर समान्तर हुईं। भाव बोध से बोझिल नजरें उठीं। मिलीं। झुक गयीं। भीगी-भीगी-सी तारकोल की सड़क पर ठंड में सिसकती बिजली के कुमकुमों की जर्द रोशनी में हमलोग खामोश चले जा रहे थे।

●

मेरी सोन-यात्रा

डा० अर्जुनदास केसरी

पहली यात्रा

वर-यात्रा : गुप्त काशी गोठानी

बात सन् 1953 की है। तब मेरी अवस्था मात्र पन्द्रह वर्ष की थी। तब प्रायः इसी अवस्था में ढोल गले मढ़ दी जाती थी। मेरे गले भी ढोल मढ़ी गयी और मेरा विवाह वर्तमान सोनभद्र के अगोरी परगना में अगोरी दुर्ग के पास गोठानी नामक स्थान पर जिसे 'द्वितीय काशी' के नाम से जाना जाता था, तय हुआ। पिताजी सख्त स्वभाव के अध्यापक थे। उन्हें वह स्थान भा गया था अतः उन्होंने शादी बिना किसी शर्त तय कर दी। इसी के चलते मुझे वहाँ जाना पड़ा। एक तो तीर्थ, दूसरे प्रकृति की गोंद, तीसरे ससुराल पियारी, सब मिलाकर क्या कहना।

तब सोन पर पुल भी नहीं बना था। नाव से उसे पार करना पड़ा था, नाव न मिलने पर वैसे ही या तैर कर पार करना पड़ता था। मुझे जो याद है, उसके अनुसार रात के लगभग आठ बज रहे थे। चारों ओर सूनसान था। चकवा-चकवी के पंख फड़फड़ाने की आवाज, बिछोह का करुण-क्रन्दन सुनाई पड़ रहा था। सुविस्तृत सोन का सूना तट, किंतु चाँदनी रात तो शायद थी ही। कचपचिया तारों भरी रात थी। मैं जोरा-जामा पहने पालकी में बैठा था। बारात थी जो आगे-पीछे जलस्तर नापकर चल रही थी। क्रमशः पानी जांघ तक, फिर सीना तक, उसके बाद कँठ तक आने लगा। डूब जाने का भय, इसलिए गाँव के रत्थी नाई यहाँ की घटना 'लोरिकी' गाकर सुनाया करते थे जिसमें लोरिक की बारात के डूबने-उबरने, झीमल मल्लाह द्वारा लोरिक की बारात को नदी पार करने, और फिर मोलागत राजा से लोहा लेकर मंजरी की बिदाई कराने का विस्तृत वर्णन सुन रखा था। मैं भी अपनी पार्वती को पाने के लिए लोरिक हो रहा था।

खैर नदी को पार किया गया पालकी ढोने वाले चारों कहाँर आपस में कुछ बातें कर रहे थे। आधी पालकी पानी में जब नीचे से डूबने लगी तो मैंने

भी अपना धैर्य खो दिया और पैदल ही नदी पार करने का निर्णय लिया। पालकी से पानी में ही नीचे उतरा तो गले तक पानी था। हां इतना अवश्य था कि बहाव नहीं था वर्ना ···· ··· जैसे-तैसे सोन नदी पार करके हम सिन्दूरिया पहुँच गये। फिर पालकी पर सवार होकर कुछ दूर की यात्रा की। इसके बाद फिर वही सूनमान, सन्नाटा जहाँ तक देखो वहाँ तक बालू और एक दूसरी नदी की धारा काफी दूर तक फैली दिखलाई पड़ी। इसे भी पार करना है, ऐसा जानकर प्राण चुण्डी में चले गये। लगभग एक कि० मी० का पाट, जिसमें आधा ही जल, दोनों तरफ जंगल, मगर-घड़ियाल सहित जंगली जानवरों का भी भय था। सुन रखा था कि यहाँ शेर-चीते दिन में दिखलाई पड़ जाते हैं। खैर उसके निवारण के लिए चनरहिया ढोल थी जो गोठानी तक आवाज करती थी। दूसरे छोर से हींगू मल्लाह और मेरे होने वाले श्वसुर जी की आवाज आती— "चल आवऽ पानी ज्यादा नहिनी, हम आवत हई।" इस आवाज ने हममें जान फूंक दिया और तब लालटेन, टार्च की रोशनी भी दिखलाई पड़ी। हम क्रमशः नदी पार करने लगे। पहले बालू पार किया। कहारों के पांव बाल में आगे धीरे-धीरे बढ़ पाते। मैं दूल्हा जमीन पर कैसे उतरता! फिर पानी आ गया। हम नदी में उतर गये। यहाँ भी क्रमशः छाती भर पानी तो आ ही गया था। सभी के पांव कांप रहे थे। सभी एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए थे। इस दूसरी रेंण नदी को भी किसी तरह पार किया गया। फिर कुछ दूर पैदल चले तो महलपुर गांव आया। मेरे श्वसुर जी अब हमारे साथ थे, इसलिए हम निर्भय हो रहे थे। बीच-बीच में पत्थर-चट्टान के टुकड़े भूत की तरह लग रहे थे। वृक्ष तो दैत्याकार खड़े थे ही। सामने तीसरी नदी बिजुल दिखलाई पड़ी। पता चला इसे भी पार करना है। अब काटो तो खून नहीं। यह गहरी किंतु पतली नदी है। इसे कमर भर पानी में पार करना पड़ा।

अब हम गांव की ओर आगे बढ़ते लगे तो कई, विशाल मन्दिर दिखलाई पड़े। यही 'गुप्तकाशी' या द्वितीय काशी है। कहते हैं जब काशी के बाबा विश्वनाथ पर संकट आया था तो वे वहाँ से लुप्त होकर यही आकर प्रकट हुए थे। किंतु हम कहाँ भागते? बारात यही मन्दिर पर टिकायी गयी थी। हम भी शिव हो रहे थे।

भींगे वस्त्रों में हम सभी वहाँ पहले कपड़े बदले फिर पानी पनवट किया तब बारात सजने लगी। एक कमरा के भीतर हमने डेरा डाल दिया। बाद में बारात शिव-मन्दिरों तथा बंसरा देवी की परिक्रमा करके दरवाजे लग गयी। द्वारचार, गारी, विवाह के सुहावने गीतों ने हमारी सारी थकान दूर कर दी

थी। अब तो न जाने क्या-क्या बारात में होता है, तब शास्त्रार्थ हुआ करते थे, मंगलोच्चार होता था, बधाई बजती थी, सो हुई। रातभर विवाह हुआ, प्रातः कोहवर खिचड़ी-भात, बड़हार के रस्म पूरे किये गये। मुझे याद है उस समय मेरी पत्नी को कोरा में उठाकर लाया गया था। अवस्था सात वर्ष रही होगी। इसीलिए तो गवना भी सात वर्ष बाद ही हुआ था। अच्छा हुआ इसी बीच मैंने अपनी पढ़ाई का काम भी पूरा कर लिया। अन्यथा – यही थी मेरी पहली सोन-यात्रा।

दूसरी यात्रा
खोढ़वा पहाड़ की चढ़ाई

सोन की वैसे तो न जाने कितनी यात्राएँ मैंने की हैं। उसके तट पर छह वर्षों तक रहने का सुख मुझे मिल चुका है। तीन वर्षों तक तो नित्य स्नान करने का भी सौभाग्य मुझे मिला है। सोन के बारे में अग्निपुराण में कहा गया है कि यह नद है और पवित्र नदों-नदियों में से एक है। इसमें स्नान का बड़ा पुण्य होता है। इसके जल का पान आरोग्य, सुखवर्द्धक है। मैं भी उक्त तीन वर्षों तक उसका पान करता रहा और आज तक आरोग्य हूँ।

अच्छा तो हाँ, सन् 1965 से 71 तक मैं चोपन में रेल कर्मचारी इण्टर कालेज में प्रथम वरिष्ठ अध्यापक था। उन दिनों पूरे दक्षिणांचल में चोपन सबसे महत्वपूर्ण स्थान था। रेल विभाग के बड़े-बड़े अधिकारी थे। उनके बच्चों को हम पढ़ाते थे। इसी बीच एक बार खोढ़वा पहाड़ की चढ़ाई का निर्णय लिया गया। हम अध्यापक, छात्र और कुछ अधिकारी थे। यात्रा प्रारम्भ हुई।

खोढ़वा पहाड़ विन्ध्य पर्वतमाला का सर्वोच्च शिखर है। विन्ध्याचल के विषय में अनेक पौराणिक कथाएँ हैं। विन्ध्याचल को सम्भवतः ऐसा वरदान प्राप्त था कि इसे कोई लाँघ नहीं सकता। जब कोई इसे लाँघकर इस पर विजय प्राप्त करने का प्रयास करता तो यह ऊपर की ओर बढ़ता जाता। ऋषि अगस्त्य के विषय में ऐसी मान्यता है कि वे समुद्र पी गये थे। समुद्र पी जाने का अर्थ है कि ये सभी समुद्रों को लांघ गये थे। उन्होंने दक्षिण भारत की यात्रा की थी और सर्वप्रथम विन्ध्य-पर्वत को लांघा था।

खोढ़वा पहाड़ मिर्जापुर के दक्षिणांचल में स्थित है, यह राबर्ट्सगंज से इक्कीस किमी॰ दक्षिण तथा चोपन से छह किमी॰ पूरब, सोन नदी के तट पर सिंह-सा खड़ा है। रेड़, बिजुल और सोन तीनों नदियों का संगम होकर जल की धारा

पूरब की ओर प्रवाहित होती, किन्तु खोढ़वा पहाड़ के कारण ही, दक्षिण की ओर मुड़ गयी है। विजयगढ़ का प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग भी इसी से जुड़ा है। इसके छह किमी० दूर पश्चिम अगोरी का किला है, जहाँ वीर लोरिक ने युद्ध किया था।

यह क्षेत्र पहले से ही दुर्गम रहा है। अब यातायात के साधनों के कारण यहाँ की यात्रा तो आसान हो गयी है, तथापि इन पहाड़ों की यात्रा अब भी कष्टसाध्य है। लोग दूर-दूर से इस क्षेत्र का भ्रमण करने आते तो हैं पर इन ऐतिहासिक स्थानों को देखे बिना ही चले जाते हैं। इनकी यात्रा अधूरी रह जाती है। यहाँ तक जाने के लिए मार्ग बनना चाहिए।

इस क्षेत्र का निवासी होने के कारण मेरे मन में आया कि एक बार खोढ़वा पहाड़ की यात्रा की जाय। लोग एवरेस्ट विजय करते हैं, क्या हम लोग इस शिखर पर भी नहीं चढ़ सकते? सब सोचकर हम कुछ व्यक्तियों ने उसपर चलने का साहस संजोया। सन् 1966-67 की बात है। चोपन में, उत्तर रेलवे के कर्मचारियों की संख्या बहुत अधिक थी। उन दिनों श्री अवधनारायण पाण्डेय यहाँ के एक अधिकारी थे। वे स्वयं भी बड़े साहसी थे और इन कार्यों में आगे रहते थे। उन्होंने बीस-पचीस लोगों को संघटित करके एक दिन खोढ़वा पहाड़ पर चलने का निश्चय किया और कार्यक्रम बन गया। बरसात का मौसम। हम लोगों ने ट्रक से अपनी यात्रा प्रारम्भ की। खाने-पीने का सामान सब लोगों ने अपने साथ ले लिया था। ट्रक जंगल के रास्ते से होकर, किले की दीवार तक तो नहीं, किन्तु लगभग तीन किमी० इधर ही रुक गयी। जंगल तो घनघोर था ही, पर हम लोगों ने अपने साथ लाठी, कुल्हाड़ी आदि ले रखा था। तब भी भय से पाँव धीरे-धीरे ही आगे बढ़ पाते।

संयोग से एक आदमी हम लोगों को मिला, जो वहीं पास के गाँव का निवासी था। उसे हम लोगों ने आगे-आगे चलने के लिए कहा। उसे कुछ पैसे की लालच दी गयी तो उसने रास्ता बता दिया। हम लोग अब किले की दीवार तक पहुँच गये। इसके बाद वह तो लौट गया किन्तु हम लोगों ने चढ़ाई चढ़ना प्रारम्भ किया। श्री चतुर्वेदी तथा गोयल साहब दो ऐसे व्यक्ति थे जो अपनी पूरी अवस्था की अर्द्धशताब्दी गुजार चुके थे। उन्हें चलने में कुछ कठिनाई का अनुभव होने लगा। धूप भी कुछ तीखी थी, जिसके कारण चढ़ाई चढ़ना और भी दूभर हो रहा था।

तब भी किसी ने हिम्मत न हारी। पाण्डेय साहब आगे-आगे चलकर हमें उत्साहित करते जाते, यद्यपि उनकी अवस्था भी चालीस से ऊपर हो चुकी थी।

जो लोग अधिक थक जाते उन्हें गरम चाय पीने को दी जाती। चढ़ाई खूब थी। अतः चढ़ने में समय भी अधिक लगता। एक बजे के लगभग हम लोगों ने चढ़ाई का अर्द्ध भाग तय किया।

अब जमीन कुछ समतल मिली। पालतू जानवर जैसे गाय, बैल, भेंड़ तथा बकरियाँ भी दिखलाई पड़ीं। अनुमान से हम लोगों ने यह समझा कि यहाँ आदमी भी रहते हैं। किन्तु आश्चर्य भी होता कि आदमी भी रहते होंगे। कुछ और आगे बढ़ने पर घास-फूस के बने मकान दिखाई पड़े। अब निश्चय हो गया कि आदमी रहते हैं।

आगे बढ़े, घर तो थे पर आदमी न थे। शायद वे अपने काम पर चले गये थे। एक स्त्री मिली। उसने पास में पानी मिलने का संकेत किया। हम लोग वहाँ गये, पानी मिला यहाँ पर हम लोगों ने विधिवत स्नान आदि भी किया। नाले का स्वच्छ जल बह रहा था। दूर तक गाँव घूमकर हम लोगों ने देखा तो विस्तृत भू-खण्ड दिखलाई पड़ा। वहाँ एक छोटा-मोटा शहर भी बसाया जा सकता है। कितना प्रकाशमय है। यहाँ के रहने वालों का जीवन, यहाँ तो मुमुक्षु साधु, सन्यासी, गाय, मुनि, तपस्वी रहते होंगे। पर यहाँ के गृहस्थ भी क्या उनसे कम हैं? इनके बच्चे गाय चराते हैं, भेड़-बकरियाँ पालते और अनुशासनप्रिय हैं। काले-भूरे भौंरे कलियों का चुम्बन लेते थे। लता-कुंजें पल्लव हिला-हिलाकर मानो नायक मलयानिल को आमन्त्रित करतीं और तितलियाँ पुष्प-पराग का आस्वाद लेतीं, नाचतीं, थिरकतीं, अठखेलियाँ करतीं। मलयानिल का आलिंगन प्राप्त कर लताकुंजें पत्र-पुष्पों की वृष्टि करने लगतीं, मानो आगन्तुक अतिथियों का स्वागत करने के लिए उत्कण्ठित हो उठी हों। धन्य है, यह प्रकृति-पुरुष का मनमोहक सम्मिलन। याद आता है एक श्लोक—

पर्याप्त पुष्पस्तवल कस्तनाभिः स्फुरत्प्रबालोण्ठमनोहराभिः।
लता-वधूभिस्तरवोऽपिरापिविनप्रशाखा भुजबन्धनानि॥

प्रकृति के इस अनन्त वैभव का आनन्द लूटते, गाते-बजाते, खाते-पीते अन्त में हम लोग लगभग तीन बजे लक्ष्य तक पहुँच गये। वहाँ सब लोगों ने अपनी क्षुधातृप्ति की। मैं खाने को कुछ ले नहीं गया था, पर मेरे अभिन्न मित्र श्री लाखन सिंह साथ थे, मैं भी उन्हीं में सम्मिलित हो गया।

सब लोगों के भोजन कर लेने पर, वहाँ स्काउट गीत गाये गये, झण्डा फहराया गया, खेला-कूदा गया। लोगों की आँखें फिर प्रकृति का सौन्दर्य निहारने में निमग्न हो गयीं। शोण की सतत प्रवहिणी धारा, नदी का कछार, उसपर

फैली विस्तृत बालुका राशि-रत्न-राशियों-सी दिखायी पड़ती थी। याद आयीं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की ये पंक्तियाँ—

कहू बालुका विमल सकल कोयल बहु छाई।
उज्ज्वल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई॥
पिय के प्रणय हेतु पाँवड़े मनहु बिछाये।
रत्नराशि करि चूर कूल मैं मनु बगराये॥

तट के वृक्ष झुके हुए थे, मानो वे पवित्र जल का स्पर्श करना चाहते हैं। अथवा वे अपना प्रतिबिम्ब ही जलरूपी दर्पण में निहार रहे हैं। सुखद, छायांकित लता-बधुओं का ओट लिये खग-कुल अपनी चहचही की ध्वनि से वातावरण को और भी स्निग्ध बना रहा था। दूर की बस्तियाँ ऐसी दिखलायी पड़ रही थीं जैसे तपस्वियों के आश्रम में मृग बैठ कर जुगाली कर रहे हों।

धीरे-धीरे चार बजने लगा। कितने ऊँचे उठे थे हम, पर अब फिर नीचे उतरने की बारी आयी। विधि का यही विधान है। हर ऊँचे उठने वाला नीचे गिरता ही है। हम लोग नीचे उतरने लगे, पर ऐसा लगता जैसे हमें हमारी इच्छा न होने पर भी कोई हठात् खींचे जा रहा हो। उतरने में अधिक कठिनाई न हुई। सात बजे के लगभग हम लोग नीचे उतर आये। अपनी ट्रक थी, आठ बजे हम अपने-अपने घर पहुँच गये।

तीसरी यात्रा

चिचली-पनौरा के शैलचित्रों का दर्शन

सीता कुण्ड के गुहाचित्र—मुखादरी और सीताकुण्ड दोनों विपरीत दिशा में दो छोर पर स्थित हैं। दोनों के बीच की दूरी लगभग 80 किमी० है। मुखादरी से सीताकुण्ड जाने के लिए पुनः शाहगंज, रावर्ट्सगंज होकर पन्नूगंज से आगे किरहुलिया होते हुए चिचलीपनौरा नामक गाँव तक जाना पड़ता है। यहां से सीताकुण्ड पहुँचने के लिए पन्नूगंज तक बस का साधन है। उसके बाद लगभग 30 किमी० की जंगली यात्रा तय करने के लिए गर्मी के दिनों में ट्रक, जीप और बाकी समय में पैदल का सहारा लेना चाहिए।

सोमा—सथारी के जंगलों में, सोन के सुरम्य तट पर सीताकुण्ड नामक एक स्थान है, जिसे 'अहीरमरवा' या 'बघमरवा' के नाम से भी जाना जाता है। कहते हैं, यहाँ अनेक अहीर गाय-भैंस चराते समय शेर के शिकार हो चुके हैं।

यहाँ जंगली जानवर मांद बनाकर रहते हैं। सोन की घाटी में वे स्वतन्त्र विचरते, गुफाओं में रहते और कुण्ड या सोन में जाकर पानी पीते हैं।

इस स्थान की प्राकृतिक छटा निराली है। सोन की घाटी के कारण यह स्थान त्रिकोणाकार हो गया है। सोन की धाराएँ समेत प्रवाहित होती रहती हैं। उसे तीन तरफ से कैमूर की ऊँची श्रेणियाँ घेरे हुए हैं। वर्षा के दिनों में इन शिखरों से वहकर जल की धाराएँ नालों या झरनों का रूप धारण कर लेती हैं। नालों का पानी वन-भाग को दो भागों में विभाजित करता हुआ सोन में विलीन हो जाता है।

सोन की सतह का भाग हजारों फीट नीचे है। ऊपर से पानी गिरने के कारण, यहाँ झरना बन गया है। कहते हैं, कभी सीता, राम और लक्ष्मण के चरण यहाँ पड़े थे। इसी कारण इसका नाम 'सीताकुण्ड' पड़ गया। सीताकुण्ड से 3 किमी० पूरब अमलादर तथा खोढ़इला गाँव से 2 किमी० उत्तर-पश्चिम सिधवाघाट नामक स्थान पर भी शैलाश्रय प्राप्त हुए हैं। इनमें मानवाकृतियों के अलावा गाय-भैंस के चित्र भी आकर्षक शैली में चित्रित हैं।

सीताकुण्ड के पास कई गुफाएँ हैं। विशाल चट्टानें हैं। चट्टानों के नीचे का पूरा का पूरा भाग चित्रांकित है। शिलाओं का ऊपरी भाग पानी पड़ने के कारण काला पड़ गया है। नीचे की चट्टानें श्वेतवर्णी हैं। इसी की दीवारों तथा छतों पर अनेक प्रकार के कलात्मक चित्र बने हुए हैं। अधिकतर रेखाचित्र हैं। ये एक प्रकार से कथा-चित्र हैं। कथा-कहानी का सम्बन्ध मनुष्य के आदि जीवन से रहा है। मानव भी कथा-कहानी के द्वारा अपना मन बहलाया करता था। आज के जैसे मनोरंजन के साधन तो विकसित न थे। तब, वह अपने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति इन्हीं लिपि-संकेतों के माध्यम से किया करता था। ये चित्र उसकी तत्कालीन भाषा के प्रतीक हैं। उस समय के मानव की भाषा मूक थी। इन चित्रों के माध्यम से ही वह अपने भावों की अभिव्यक्ति मूक रूप में किया करता था।

ये चित्र प्रायः जानवरों के हैं। हाथी, घोड़ा, गैंडा, गाय, बैल, सूअर, मगर, गदहा, छिपकली, बिच्छू, आदि के अतिरिक्त आदमी के चित्र भी बने हैं। धनुष-बाण लिये, प्रत्यंचा चढ़ाये हरिण का पीछा करता व्यक्ति दिखाया गया है जो जटा-जूट धारी है। हरिण बेतहाशा भाग रहा है। सीता कुण्ड की गुफाओं के चित्रों की तुलना मध्य प्रदेश के रायसेन की गुफा के चित्रों से की जा सकती है।[1]

---

1. दे० श्री वाकणकर का लेख "साइंस टुडे" अप्रैल 1983 पृष्ठ 45–48।

इसी प्रकार कहीं हाथियों को और कहीं घोड़ों को पंक्तिबद्ध खड़ा चित्रित किया गया है, मानो वे सेना-प्रयाण के लिए तत्पर हों। कहीं-कहीं आदमी भी पंक्तियों में खड़े हैं और उनके हाथ में शस्त्रास्त्र हैं। पशु-पक्षी, कीट-पतंगे ही उस युग के मानव के सच्चे मित्र थे। उन्हीं के साथ रह कर वह सुख-दुःख की अनुभूतियाँ किया करता था। जानवरों का मांस खाना, इधर-उधर घूमना, अपनी मस्ती में जीना, उसका स्वभाव था। तब वह अधिक सुखी भी था, इसलिए की उसकी आवश्यकताएँ अत्यल्प थी। आज का मानव सचमुच बहुत दुःखी है, इसलिए कि उसका जीवन बिखर गया है। जीवन की विसंगतियाँ उसका पीछा नहीं छोड़ती। उसकी आवश्यकताएँ बढ़ गयी हैं। सचमुच ये गुहाचित्र तत्कालीन जीवन-दर्शन के जीते-जागते प्रमाण हैं। ये चित्र भी नवानुसंधानित हैं। यहाँ हिंस्र पशुओं का भय निरंतर बना रहता है। अतः गाँव के लोगों को साथ लेकर और संभव हो तो बन्दूक आदि लेकर ही जाना चाहिए। इन पंक्तियों के लेखक ने जून महीने में यहाँ की यात्रा की थी। शस्त्रास्त्र से सुसज्जित चार आदमी साथ थे। मार्ग में छोटे-बड़े जानवर तो मिले ही, जब बाघ की माँद दिखाई पड़ी तो हमारे होश उड़ गये। गाँव के लोगों ने बताया कि यहाँ बाघ रहता है। कुछ दूर आगे बढ़ने पर बाघ की गंध भी आयी, हम ठमक गये, पाँव थर्राने लगे, किन्तु साहस समेटे कुछ और आगे बढ़े तो एक बाघ दिखाई पड़ ही गया। हिम्मत ने जवाब दे दिया और हम लोगों ने उस दिन की यात्रा स्थगित कर दी।

कुछ दिन बाद पूरी तैयारी के साथ पुनः यात्रा की गयी। इस बार आठ आदमी अपने साथ थे अतः भय कम था। इस यात्रा में कोई खतरनाक जानवर भी नहीं मिला और हमने जाकर उक्त चित्रों के प्रथम दर्शन किये।

चौथी यात्रा

लेखनियां के गुहाचित्रों के प्रथम दर्शन

गुहाचित्रों के अध्यनका महत्व भी दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। यह पुरातत्व और इतिहास का विषय है। तथापि लोकवार्ता के तत्व भी इसमें निहित हैं। इसके अध्ययन से लोक-संस्कृति प्रकाश में आती है और लोक जीवन का प्राचीन इतिहास सामने आ जाता है।

लोकवार्ता शोध संस्थान राबर्ट्सगंज की ओर से आयोजित शिविर की अन्य उपलब्धियों में लेखनियां के गुहा चित्रों का अध्यन एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। शिविर का आरम्भ ओबर से हुआ था और शिविर का समापन राबर्ट्सगंज में हुआ।

लेखनियां राबर्ट्सगंज से 14 कि० मी० दक्षिण-पश्चिम एक पहाड़ी की गुफा का नाम है। यहाँ शाहगंज और राजपुर से होकर जीप, साइकिल अथवा पद-यात्रा द्वारा पहुंचा जा सकता है। राजपुर से यह स्थान लगभग 8 कि० मी० दक्षिण सोन के तट पर अवस्थित है। सुरम्य प्रा: तिक दृश्य है। हजारों फुट नीचे सोन की धारा सर्पाकार रूप में प्रवाहित होती रहती है। यह स्थान बहुत पहले से ही शिकारगाह रहा है। राजपुर के राजा स्वर्गीय आनन्दब्रह्म शाह यहां शिकार खेलने जाया करते थे। पचीसों शेर यहां उनके द्वारा मारे जा चुके हैं। यहां अब भी शेर की मांद है। तथा यदाकदा शेर दिखलायी पड़ जाते हैं।

वर्षा के दिनों में घाटी का दृश्य देखते ही बनता है। हरिणों के झुण्ड तो बड़े आसानी से देखे जा सकते हैं इसके चारों ओर पहाड़ियाँ हैं। पश्चिम की ओर अगोरी दुर्ग है तो पूरब की ओर कण्डाकोट और विजयगढ़ के दुर्ग हैं, दक्षिण ओर खोढ़वा पहाड़ का सर्वोच्च शिखर दूर ही से दिखलाई पड़ जाता है। आज का मानव यहां नहीं रह सकता, किन्तु प्रागैतिहासिक काल का मानव यहां रहता अवश्य था। वह इन गुफाओं में रहता था। वह कलाप्रेमी था। इन गुफाओं में वह चित्र भी बनाता था। इन चित्रों से ही वह अपने भावों विचारों की अभिव्यक्ति किया करता था। कैमूर घाटी में ऐसे चित्रों की कमी नहीं है। विन्ध्य के गुहाचित्रों की अपनी विशेषताएँ हैं। कुछ विद्वानों ने इन पर बहुत कुछ लिखा भी है, किन्तु लेखनियां के गुहाचित्रों का अध्ययन अब भी सर्वथा नवीन है।

गुहाचित्रों का अध्ययन अब भी सर्वथा नया है। ये चित्र गेरू रंग के बने हैं जिसे कुछ विद्वान घाऊ (हेमेरादूर) भी कहते हैं। पेड़ों के रसों का भी समिश्रण हो सकता है। डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी (हिन्दू सभ्यता पृ० 13) के अनुसार विन्ध्याचल के मिर्जापुर जिले में जिसमें भाले लिए हुए शिकारी गेंडे पर हमला कर रहे हैं, होशंगाबाद जिले की दरी में जिराफ का चित्र, कैमूर की पहाड़ियों में बारहसिंघों का शिकार के दृश्य और सिंघनपुर जहाँ कंगारू जैसे किसी पशु घोड़े तथा हिरणों के चित्र हैं, जो समकालीन स्पेन में बने हुए जीवों से मिलते-जुलते हैं। ये चित्र नव प्रस्तर युगीन हैं। ऐसे चित्र बघेलखण्ड, बुन्देलखण्ड में भी पाये गये हैं। बुन्देलखण्ड में इन्हें रक्त की पुतलियां कहते हैं तो उत्तर प्रदेश में कोहबर के चित्र के नाम से जाने जाते हैं।

डाक्टर राजबली पाण्डेय के अनुसार इन चित्रों के साथ संकेत रूप में खरोष्ठी लिपि के अक्षर भी पाये जाते हैं। काकबर्न साहब ने पंचमुखी के एक

चित्र को शंखलिपि कहा था। जो भी हो, ये चित्र संकेतात्मक, कथात्मक और भाव-प्रवण हैं, ये लगता है किसी सिद्धहस्त कलाकार के हाथ के बने हैं। शिकार, यात्रा, गोचारण, पूजा-आराधना, नृत्य-नाट्य संगीत, मनोरंजन, परिवार, मधु-संचय, जीव-दया, बालें, पर्यावरण, नारी-सम्मान, प्रेम, करुणा, परोपकार, अनुशासन, अभिवादन से सम्बन्धित हैं जिनकी आज के दैनन्दिन-वैज्ञानिक जीवन में भी बड़ी उपयोगिता है। ये चित्र तत्कालीन मानव के पुराणेतिहास हैं।

कुछ नंगे आदमियों को खड़ा कर दिखाया गया है। एक की कमर में कुछ बंधा है। दोनों अपने दोनों हाथों को फैलाये हुये हैं। एक आदमी को जाता हुआ दिखाया गया है। वह कोई समान लाठी में लटकाकर कंधे पर रखे हुये है।

कुछ चित्र जानवरों के भी वने हुये हैं। जानवरों में गाय, बैल, बकरी के ही चित्र अधिक हैं। एक जानवर भाग रहा है। एक बकरी को बच्चा जनता हुआ दिखाया गया है। एक और कोई जानवर है जिसकी पीठ पर कोई दूसरा जानवर सवार है।

यहाँ के कुछ चित्र चनाइना मान के चित्रों से मिलते-जुलते हैं। एक पालकी है जिसे दो आदमी कन्धे पर रख कर ढो रहे हैं। उसके अन्दर जैसे कोई दुल्हन बैठी हुई है।

कुछ और जानवरों के चित्र हैं। कोई जानवर भाग रहा है। उसे कोई आदमी दौड़ाकर मार रहा है। कुछ हरिन पंक्तिबद्ध खड़े हैं। कुछ चरते हुए दिखाये गये हैं।

यहाँ के कुछ अन्य चित्र पंचमुखों के चित्रों से मिल रहे हैं। दोनों तरफ जानवर हैं, बीच में दो आदमी दौड़ रहे हैं। एक आदमी लाठी लेकर जानवरों को चरा रहा है। आदमी लाठी को कन्धे पर रखकर दोनों हाथों से पकड़े हुए है। उसके सिर पर कलंगी बनी हुई है।

सेना प्रयाण के भी कुछ दृश्य अंकित हैं। सभी चित्र सामान्यतः अच्छे हैं। बहुत से मिट गये हैं या मिटते जा रहे हैं। कला की दृष्टि से चाहे वे उतने महत्त्वपूर्ण न हों, किन्तु भावना और कल्पना की दृष्टि से वे कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। सजीवता सभी चित्रों में विद्यमान है। इन चित्रों को देखने से हर्ष प्रेम करुण वात्सल्य कर्त्तव्य निष्ठा के भाव व्यक्ति होते हैं। ये चित्र उस समय के मानव-जीवन की कहानी कहते हैं। इनका विश्वविद्यालयीय स्तर पर अध्ययन करने की आवश्यकता है।

पांचवीं यात्रा

शरद्पूर्णिमा की रात सोन के तट पर

आज शरद्पूर्णिमा है। चाँदनी रात में नौका-बिहार करना कितना अच्छा लगता है। लोग दूर-दूर से गंगा, जमुना, गोमती आदि नदियों के तटपर आते हैं। बड़ी भीड़ जमा हो जाती है।

मैं चोपन में सोन के पुल पर अकेला बैठा हूँ। रात के दस बज रहे हैं। वातावरण नीरव, निष्पन्द शान्त, एकान्त है। चारों ओर सूनसान है। आकाशके आंचल में केवल चन्द्रमा दिखाई पड़ रहा है। पुल पर लगे लोहे के छड़का सहारा लेकर मैं सोन के जल में उसे निहारता हूँ। उससे वह नादान शिशु सा नाचता थिरकता, हंसता-विलसता दिखलाई पड़ता है। मेरी अविरल निहारते रहने की पिपासा बढ़ती जा रही है और वह भी जैसे मुझे चिढ़ाने के लिए अपना नृत्य बन्द नहीं कर रहा है।

उत्तर से कृत्रिम प्रकाश फैलाती कोई गाड़ी आ जाती है। मेरी अवधानता भंग हो जाती है। मैं गाड़ी के प्रकाश में अपनी घड़ी पर एक हल्की दृष्टि फेरता हूँ। घड़ी ग्यारह बजाने वाली है। मुझे चिन्ता नहीं है। आज पूरी रात सोन के तट पर बिताने का निश्चय कर आया हूँ। यह रात अपनी हैं।

मैं पुलिया पर बने सीमेण्ट के चौतरे पर बैठ जाता हूँ। 'मेरा मुख पूरब की ओर है। खोढ़वा पहाड़ सामने दिखलाई पड़ रहा है। यह देखने में ऐसा लग रहा है, जैसे कोई सिंह धरती और आकाश के बीच में बैठा हो। पहाड़ के ऊपर धवल मन्दिर है। मन्दिर में शिवलिंग स्थापित है। शरद् चाँदनी में अजीब शोभा विकीर्ण कर रहा है। 'मुद्राराक्षस' का एक श्लोक है—

आकाशं काशपुष्पच्छविमभिभवत भस्मना शुक्लयन्तो,
शामशोरंशुजालैर्जलधर मलिनांक्लिन्दली कृत्तिमैभोम्।
कापालीमुद्वहन्ती अजमिव धवलां कौमुदमित्यपूर्वा,
हासश्री राजहंसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशां शरदा ॥3:20॥

महादेव की मूर्ति के समान रूपवाली यह अपूर्व शरद् ऋतु आप लोगों के कष्ट का निवारण करे। महादेव काशपुष्पों की शोभा को तिरस्कृत करने वाली भस्म से आकाश को धवल बनाते हैं। शरद् मध्य के समान सफेद काश पुष्पों की कांति से आकाश को धवल बनाती है। महादेव मस्तक पर धारण किये हुए चन्द्रमा की किरणों से मेघ के समान काले गजचर्म को गीला बनाते हैं तो शरद-चन्द्रमा किरणों से गजचर्म के समान काले मेघों को निर्मल बनाता है महादेव

चन्द्रमा के समान धवल कपाल माला को धारण करते हैं तथा राजहंस के समान धवल अट्टहास से सुशोभित है, शरद् कपाल माला के समान श्वेत चन्द्रिकाधारण करता है और राजहंसों की हास्यश्री से सम्पन्न है।'

चाँदनी रात में सुविस्तृत जल की धाराएँ बीच-बीच में रेत जम जाने के कारण कई खण्डों में विभाजित हो गयी हैं। लगता है, चाँदी के शतखण्ड चकत्तों से उसे पार दिया गया है। श्वेत बालुका-राशियां मानो पलक-पांवड़े बिछाये किसीकी प्रतीक्षा कर रही हों, जैसे सोन का वह तट यमुना का तट हो और राधा-कृष्ण युगल रूप में कहीं छिपकर कुंज-विहार कर रहे हों।

सोन के बीच बालुका राशि पर एक टिमटिमाती रोशनी दिखलाई पड़ जाती है। रोशनी में तीन व्यक्ति दिखलाई पड़ जाते हैं। समीप में एक छोटी-सी नौका भी है। अतः अनुमान है कि ये मल्लाह ही होंगे। वैसे भी चांदनी रात में भी वे काले-कलूटे ही दिखलाई पड़ रहे हैं। एक परिवार है—गरीबों का। ये दिन भर नाव चलाते हैं, मछली मारते हैं, शायद मछली को भूनकर खाने के लिए ही आग जला रहे हैं। पति-पत्नी हैं। एक नन्हा-मुन्ना भी है। इसके तन पर कोई वस्त्र नहीं है। आग जलते ही वह आग के पास बैठ जाता है। शायद शीत का कुछ असर हो रहा है, अथवा भूख के कारण मछली मिलने की प्रतीक्षा में ही वहाँ बैठ गया है। इसे दूध-बताशा कभी नसीब नहीं हुआ होगा। महलों के देवता की पूजा तो सभी करते हैं, गली-गलियारों के प्रस्तर-खण्डों को कौन पूजता है।

बात सच निकलती है। वे मछलियां भूनकर खाते और बालुका राशि पर सो जाते हैं। यही उनका पलङ्ग है। शरद् चाँदनी ही ऊपर से ओढ़ने वाले श्वेत चादर का काम करती है। मुझे कितना दुःखमय लग रहा है इनका जीवन, किन्तु सचमुच ये कितने सुखी हैं। एक अंग्रेजी कविता मैंने कभी पढ़ी थी, जिसमें कवि की अभिलाषा थी कि उसके पास एक छोटा-सा कमरा हो, उसमें कुछ पुस्तकें हों, एक चौकी हो, छोटा-सा उसका परिवार और एक छोटा-उद्यान हो, वह सबसे अधिक सुखी होगा। इनका सुख उस कवि की कल्पना-लोक से बहुत ऊँचा है।

घड़ी पर पुनः मेरी दृष्टि दौड़ जाती है। निशीथ की खामोश बाहों में आज मैं जिस सुख का अनुभव कर रहा हूँ, कभी नहीं किया था। ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ मन में उछाल पैदा कर देती हैं। मैं अब वहीं लेट जाता हूँ। बचपन की बात याद आती है, माँ ने कहा था—'चन्द्रमा से पूर्णिमा का अमृत-टपकता है।' मुझे तो लगता है जैसे अमृत की वर्षा हो रही हो। मैं आज उसका खूब पान कर

लेना चाहता हूँ। मुझे चाँदनी में स्नान करना भी कितना सुखद लग रहा है। सचमुच जैसे यह मेरे अभिषेक और अभिनन्दन की बेला हो।

यहाँ से घुरमा ओर ओबरा, चोपन का विद्युत प्रकाश भी दिखलाई पड़ रहा है, किन्तु आज पता नहीं क्यों उधर दृष्टि दौड़ाने की इच्छा ही नहीं हो रही है। मैं पश्चिम मुखकर खड़ा हो जाता हूँ।

काफी दूर तक मेरी दृष्टि एक साथ ही दौड़ जाती है। सोन, रेणु और विजुल तीनों नदियों का यहीं संगम है। तीनों ओर से तीन नदियाँ जहाँ आकर मिलती है बीच में टापू बन गया है। चारों ओर तट के वृक्ष मानों प्रहरी की भाँति खड़े हैं। धाराएँ पत्थर से टकराकर कलकल ध्वनि कर रही है। एक ओर गोठानों के बीसों विशाल मन्दिर है तो दूसरो ओर अगोरा का विशाल ऐतिहासिक दुर्ग। शरद् चाँदनी की छटा में सभी मिलकर अजीब शोभा विकीर्ण कर रहे हैं। इसे गुप्त काशी कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि जब मुसलमानों ने काशी के मन्दिरों को तोड़वाना प्रारम्भ किया था तो भूतभावन बाबा विश्वनाथ काशी से अन्तर्धान होकर यहीं प्रकट हुए थे।

यही वह अञ्चल है, जहाँ मंजरी ने जन्म लिया था और बीर लोरिक उसे ब्याहने गौरा से यहाँ सवा लाख बारातियों को लेकर आया था। राजा ओम्रागत से उसका भयंकर युद्ध हुआ था और लाश से धरती पट गयी थी इतना शोणित वहाँ था कि सोन खून की नदी बन गयी थी। सोन के तटपर लाल पत्थर आज भी वीरों के निशान के रूप में विद्यमान है।

सोन को नदियों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। यह नद है जिसे पौराणिक महत्व प्राप्त है। इसके दर्शन मात्र से सारे कलप नष्ट हो जाते हैं। यह आदिवासियों की गंगा तथा पावन तीर्थ है। इसके तट पर विद्यापति के गान अमर हुए थे। प्रसाद की 'ममता' ने यही विश्राम किया था। इसके तट पर कितने साधकों ने अपनी साधना पूरी की है। सोन के तट का सूर्योदय और सूर्यास्त प्रसिद्ध है। प्रातःकाल का बाल-सूर्य खोढवा से उदय होकर विन्ध्य के शिखरों में सायंकाल समाहित हो जाता है। आज पूर्णिमा के दिन सूर्य के अस्ताञ्चल प्रस्थान करने ही चन्द्रमा ने अपनी ज्योति पूरे भूमण्डल में फैला दी। उसकी छटा पूरे बातावरण को अनुरंजित किये हुए है।

मेरे देखते-देखते चन्द्रमा निम्नमुखी हो गया सायंकाल सूर्य को अस्त होते भी मैंने देखा था। चिड़िया-चुनमुन रैन-बसेरा लेने लगे थे। अब रात भी ढलने लगी। भोर होने लगा। अब सूर्य की यात्रा पुनः प्रारम्भ होगी, उसके साथ सभी

प्राणी अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देंगे। यात्रा का आवरण घेरेगा और अब मैं भी सब कुछ भूल जाऊँगा। यह शरद्पूर्णिमा का आनन्द मुझसे एक साल के लिए दूर हो जायगा। एक साल बाद आयेगी भी तो शायद यह उत्सुकता न रहेगी। हम भी बदल जायेंगे और एक साल में सब कुछ बदल जायगा। जगत् ही परिवर्तनशील है।

किसी ने चुपके से आकर मेरे कानों में कहा—भोर की किरण झांक रही है। अब तुम यहाँ से कूचकर जाओ।' मैं अपने आवास की ओर पांव बढ़ाने लगा और क्षण में ही मेरा सारा साम्राज्य मुझसे छीन लिया गया। इतना सबके बाद भी सोन के तट पर शरद्पूर्णिमा की वह रात मुझे कभी नहीं भूलेगी।

छठीं यात्रा

बाढ़

विन्ध्य पर्वत श्रेणियों से घिरा मिर्जापुर का विस्तृत भू-भाग सोनान्चल और उसकी घाटी। समय—अर्धनिशा से दूसरे दिन मध्याह्न तक कैमर के सीने पर शोणनद की विस्तृत धारा शतखण्डों में प्रवहमान है। धारा के भयङ्कर वेग में आदमी, पशु-पक्षी, वन्य-जीव जन्तु, घर, पेड़-पौधे सब बहते जा रहे हैं। दर्शक-मण्डली त्राहि-त्राहि कर रही है। सबके सब किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं। नदी के आस-पास बसे गांव उजड़ चुके हैं। यहाँ प्राय: आदिवासी जातियों की बस्तियां हैं। कुछ मल्लाह, मांझी तथा बैगा, बसवार भी हैं। यहाँ कुछ ब्राह्मण, क्षत्रिय जाति के अमीरों की भी बस्तियां हैं, किन्तु उनके मकान प्राय: ऊँचे हैं। गरीबों की बस्तियों को उजाड़कर अब सोन का पानी उन अमीरों की बस्तियों की ओर बढ़ने लगा है। वे भी अपने-अपने घरों को छोड़कर भाग रहे हैं। कुछ नावें लगी हैं, जिनसे आदमियों को ढोने का काम लिया जा रहा है। नावों पर कुछ नन्हें मुन्ने बच्चे, कुछ पर्दानशीन स्त्रियां और कुछ बूढ़े तथा बूढ़ियां भी हैं। नवजवान पानी में तैरकर पार उतर रहे हैं। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे टीले हैं, उन टीलों पर गांव के आदमी घर-गृहस्थी का सामान लेकर बैठे हुए हैं। उन टीलों के चारों ओर पानी हिलोरे ले रहा है। नदी की धारा बढ़ती ही जा रही है। उनके हृदय कांप रहे हैं। उन्हें बचाने वाला कोई नहीं है। अर्धनिशा में यहाँ मिले भी कौन पानी बरस रहा है, कुछ-कुछ हवा भी चल रही है। सबके सब भींग रहे हैं। कुछ लोग हरिकीर्तन कर रहे हैं। ऐसे में भगवान के अतिरिक्त दूसरा सहारा ही कौन है।

एक वृद्धा अपने वृद्ध पति से कहती है—'सोनभद्र में इतना पानी कभी दिखलायी नहीं पड़ा था। पचास वर्ष पहले एक बार बाढ़ आयी थी, किन्तु इतना पानी तो उसमें भी नहीं था।'

'सोन, मइया बिगड़ गयी हैं। उनकी मनौती मानो तो ठीक हो जायेंगी।' वृद्ध ने कहा।

'मनौती क्या मानू ! उस बार आयी थीं जो मेरा एक-मात्र पुत्र था, उसे ले गयी थीं, इस बार नाती को उठा ले जातीं, किन्तु विश्वनाथ बाबा ने बचा लिया।'

किसी प्रकार टेलीफोन द्वारा समाचार प्रसारित किया गया। तीन बजे रात तक पुलिस के कुछ आदमी वहाँ पहुँच गये। वे सहायता करने गये थे, किन्तु क्या करें हठात् काल के गाल में वे कैसे चले जायें। गांव के आदमी कुछ साहस करते हैं और तैरकर कुछ आदमियों को बचा लेते हैं। तब भी सैकड़ों घर बेघर हो ही जाते हैं।

प्रातःकाल पत्रकारों का दल भी वहाँ पहुँच जाता है। दूसरे दिन अखबार के किसी कोने में बाढ़ आने का समाचार प्रकाशित हो जाता है। सैकड़ों घर बह गये, हजारों जानें चली गयीं, लाखों का नुकसान हो गया, किसी के कानों में जूं तक न रेंगी। दर्शकों की भीड़ लगी थी। उस दिन मंगलवार था और राबर्ट्सगंज का बाजार बन्द था। दस-बीस सेठ-साहूकारों की कारें हवाखोरी के लिए वहाँ पहुँच गयी थीं। आज उनके लिए हवाखोरी का बहुत अच्छा मौसम था। वे खाने-पकाने के सामान भी अपने साथ ले गये थे और झरने के पास हलवा, पूड़ी, खीर तथा अन्य अच्छे-अच्छे पकवान पकाये जा रहे थे। उजड़ी बस्तियों के वनवासी आदिवासी लकड़ियाँ काट रहे थे। उनमें अनेक पाँच से दस वर्ष तक के बच्चे, बालक थे जो तीन-तीन चार-चार दिन के भूखे थे। उनमें से एक ने साहस करके कहा—'बाबूजी एक रोटी, बड़ी जोर की भूख लगी है।'

माँ पास में बैठी थी वह ऐसा करने से रोकना ही चाहती थी कि सेठजी ने गुर्राते हुए कहा—'जाओ, जाओ भीख माँगों, यहाँ खाने भरको ही बना है।'

'बाबूजी उसी में से एक टुकड़ा फेंक दीजिये'—बच्चे के पिता ने कहा। कहाँ से फेंक दूं। फिर तुम अकेले थोड़े हो। सैकड़ों बेघर हो गये हैं। सबको खाना यहाँ कैसे मिल सकता है।'

इतने ही में एक रोबीली कार आ गयी। कार में दो भले आदमी बैठे थे। एक स्त्री तथा दो बच्चे भी थे। वे किसी अधिकारी के बच्चे थे। बाद में पता चला कि उक्त अधिकारी महोदय बाढ़ की स्थिति का निरीक्षण करने आये थे।

कार रुकी और अधिकारी का ध्यान सबसे पहले सेठजी की ओर ही गया। सेठजी ने सलामी दागी। शायद आज सेठजी द्वारा उक्त अधिकारी को दावत दी गयी थी। उतरते ही अधिकारी ने कहा—

'सेठजी बुरा न माने, कुछ विलम्ब हो गया। दो-तीन 'गेस्ट' आ गये थे।'

कोई बात नहीं साहब, अभी तो बन ही रहा है। आज तो मस्ती का दिन है। बाहर भोजन बनाने-खाने में तो विलम्ब हो ही जाता है। 'भोजन में क्या-क्या सामान बन पाया है?' 'पूड़ी और खीर तैयार है, तब तक नास्ताकर लीजिए। अभी सब्जी और गोस्त बनवा रहा हूँ।

'बाढ़ की स्थिति का अवलोकनकर आये आप, सेठजी।' अधिकारी ने कहा 'कहाँ गये सरकार, भोजन व्यवस्था ही में लग गये। सोचा अब भोजन करके ही चलूंगा। '···लेकिन मैं तो सोच रहा हूँ, लौट जाऊँ।' 'सरकार को रिपोर्ट भी तो भेजनी है।'

'कागजी घोड़ा तो दौड़ाना ही पड़ेगा। गरीबों को कुछ सहायता मिल जायगी।' '·· लेकिन सरकार सब भूखों मर रहे हैं। सहायता कब मिलेगी।' 'सेठजी ! सरकार का काम सब ऐसे ही होता है।'

इतने ही में एक जीप भी वहाँ आ गयी। जीप में पी० डब्लू० डी० के इंजीनियर साहब बैठे थे। वह भी बाढ़ ही का निरीक्षण करने आये थे। सड़क यातायात ठप और चारों ओर पानी भरा था। सैकड़ों ट्रकें, बसें तथा प्राइवेट कारें पक्तिबद्ध खड़ी थीं।

इन्जीनियर साहब अपने सहायक से अंग्रेजी में बात कर रहे थे और धुआंधार सिगरेट भी पीते जा रहे थे। चोपन पुल के उस पार सड़क पर पानी लगा था। बन्धा कटवाकर ही पानी निकाला जा सकता है। पर इन्जीनियर साहब का कहना था कि बन्धा नहीं कटवाया जायगा। इसको कटवाने में और फिर बनवाने में सैकड़ों रुपये का खर्च था। खर्च सरकार देने को शीघ्र राजी नहीं होती।

जनता ने उनसे बहुत आग्रह किया कि वे उसे कटवा दे। इसी कारण कितने घरों में पानी भर गया है। तीन दिन से लोग भूखों मर रहे हैं। रास्ता साफ हो जाने पर वे चले जायेंगे।

इन्जीनियर साहब सीधे क्यों मानते। इसी बीच डिप्टी कलक्टर की गाड़ी वहाँ आ गयी। उन्होंने बन्धा काटकर पानी बहाने का शीघ्र आदेश दिया। इन्जीनियर साहब के अज्ञान पर लोग हंसने लगे।

चोरन में ही नदी के किनारे मल्लाहों की बस्ती—जो अब प्रायः बह गयी है। मध्याह्न के निकट का समय था।

(एक अधिकारी की जीप मल्लाहों की बस्ती में पहुँचती हैं। यहाँ कई घरों में रोना-पीटना मचा हुआ है। पूरी बस्ती नष्ट हो चुकी है अन्न, खाने-पीने के सामान, कपड़े-लत्ते सब सोन की गोद में प्रवाहित हो गये हैं। घर गिर पड़े हैं। वे ऐसे जीव हैं जो रोज कुंआ खोदते और रोज पानी पीते हैं। तब भीं दो दिन से इस मुहल्ले में आग जली ही नहीं है। स्त्री-बच्चे सब भूखों मर रहे हैं। वे घूर के दाने बीनकर खा रहे हैं।)

एक स्त्री के रोने-धोने की आवाज सुनाई पड़ती है। अधिकारी की जीप वहीं रुक जाती है। अधिकारी महोदय रोने का कारण पूछना चाहते हैं।

'साहब इसका लड़का बहकर मर गया है। इसीलिए यह रो रही है।' एक आदमी बोल उठता है।

'सरकार गाँव के बच्चे भूखों मर रहे हैं, इन्हें भोजन चाहिये। दूसरे व्यक्ति ने कहा।

'सरकार हम बेघर हो गये हैं, कुछ सरकारी सहायता मिलनी चाहिये।' तीसरे ने कहा।

'सरकार हमें कहीं नौकरी ही दिलवा दीजिये' कई स्वर एक साथ मिलकर बोल उठे।

अधिकारी ने सबको धैर्य धारण करने के लिए कहा और कहा कि सरकार कोई व्यवस्था करेगी। कहकर अधिकारी महोदय वापस चले गये।

(दूसरा दिन सायंकाल के पाँच बज रहे थे। सोन का पानी शमन पर था। वातावरण कुछ शान्त-सा हो चला था। सबके सब दुखी थे।)

अधिकारी की वही जीप पुल के पास खड़ी थी। पता चला कि आज सरकारी सहायता दी जायगी। कुछ हजार रुपये मंजूर हो गये हैं। कई हजार व्यक्तियों के बेघर हो जाने का समाचार और कुछ हजार रुपये, कुछ भी नहीं थे।

तकावी की सूचना भी प्रसारित नहीं की गयी थी। शायद इसलिए कि अधिक भीड़ एकत्र हो जायगी। वैसे रुपये बाँटे गये, दो-दो, चार-चार के हिसाब से दिये गये। कुछ तो उसमें से भी अधिकारियों और कर्मचारियों के जेल में चले गये।

सातवीं यात्रा

सावन में सोनघाटी का सौन्दर्य

पुराणों में विन्ध्य क्षेत्र की महिमा का विस्तार से वर्णन मिलता है। मिर्जापुर विन्ध्य क्षेत्र का हृदय है। इसे काशी क्षेत्र भी कहते हैं, विन्ध्यवासिनी देवी का धाम होने के कारण धार्मिक दृष्टि से भी इसका बहुत महत्व है। यह ऋषियों महर्षियों की साधना-भूमि है। ऐसी भी धारणा है कि यहां शरीर त्याग से मुक्ति प्राप्त होती है। कैमूर-क्षेत्र विन्ध्य पर्वतमालाओं से घिरा यह विस्तृत भू-खण्ड है, जिसे प्रकृति देवी ने सजा-संवारकर नन्दन कानन सा बना दिया है। मिर्जापुर नगर से जैसे ही हम दक्षिण की ओर बढ़ते हैं प्रकृति का अनन्त वैभव सर्व-सुलभ हो जाता है। हरियाली देखते ही नेत्रों का तपन बुझ जाती है। शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर तन, मन, प्राण सबको स्वस्थ, स्निग्ध एवं मन्दक बना देता है। हमारी सुषुप्त मानसिक वृत्तियाँ प्राणवान होकर सौन्दर्य के प्रति सुरुचिसम्पन्न हो जाती हैं। यह सौन्दर्यानुभूति मानव जन्य अविकल प्रेम सम्बन्ध को विकसित कर आनन्दानुभूति के लिए सतृष्ण बना देती है।

जब हम राबर्टसगंज से आगे बढ़ते हैं तो सोनघाटी का सुरम्य दृश्य हमारे मनको मुग्ध कर लेता है। हम अपने को प्रकृति देवी की गोद में पाते हैं। लगता है माँ वसुन्धरा ने हमें अपनी गोद में ले खुद अमित स्नेहसिक्त भाषा में भावुकमना होकर, वात्सल्यातिरेक में हमें आह्लादित कर दिया हो। उसकी गोद ही पालना बन जाता है, पक्षियों के कलरव प्रभाती या लोरी बन जाते हैं। नदी, नालों, झरनों का कल-कल निनाद कर्ण-कुहरों की ओर भी मनोज्ञता प्रदान करता है। इस दृश्य को हम अपलक देखते ही रह जाते हैं। आनन्द-कानन, कश्मीर की तलहटी, हिमालय की वनस्थली तथा मथुरा-वृन्दावन का मधुबन भी मानो इसके सामने फीका लगने लगता है।

जब हम मारकुण्डी घाट पर पहुँचते हैं तो सबसे पहले हमारी दृष्टि पटरी-सा खडा खोढ़वा पहाड़ पर ही पड़ती है। खोढ़वा इस अंचल का सर्वोच्च शिखर है जो बैठे सिंह की भाँति प्रतीत होता है। सोन नद खोढ़वा के गले में जयमाल-सा सुशोभित है, अथवा शंकर के गले में लिपटे शेषनाग-सी दिखाई पड़ती है, हमारी दृष्टि पहले तो खोढ़वा के सौन्दर्य दर्शन की लालसा में ऐसी उलझ जाती है कि उससे हटती ही नहीं, यत्न करनेपर जब उससे हटा ली जाती है तो सोन के सुषमा-दर्शन में निमग्न हो जाती है। उससे भी यदि दृष्टि बलात् हटायी जाती

है तो सोन घाटी के विस्तृत भू-खण्ड पर आ टिकती है। यह भूभाग ऐसा लगता है। जैसे विन्ध्य पर्वत का विशाल वक्षस्थल हो। पहाड़ को काटकर राजमार्ग बनाया गया है। जिसको देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे स्वर्ग सोपान ही बने हों।

वैसे तो हर मौसम में ही यह स्थान रमणीक लगता है परन्तु बरसात और जाड़े के दिनों में इसकी शोभा और भी बढ़ जाती है। वर्षा की रिमझिम बूंदों से घुलकर प्रकृति के सारे उपादान सहज स्वाभाविक होकर सौम्यता, स्निग्धता एवं सुन्दरता के कोड़ में विलसने लगते हैं। लताकुन्जें नयी अवगुण्ठनं बनी दुलहन-सी सज जाती है। लता-वितान उसके घूंघट बन जाते हैं, उभड़े शिखर-खण्ड उसके उन्नत-उरोज-से प्रतीत होते हैं, प्रवह मान स्रोतस्विनी की निर्मल-धारा उसकी करधनी बनकर उसके सौन्दर्य-विधान में चार चाँद लगा देती है। बीच-बीच में गड्ढों में इकट्ठ हुए जल ऐसे प्रतीत होते हैं मानो प्रकृतिदेव दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब निहारकर अभिसारिका नायिका-सी शृङ्गार करती और कभी मुग्धा-सी स्वयं पर ही मुग्ध भी हो जाती है।

वर्षाकाल में आकाश में मेघ छा जाते हैं। ऊँची-नीची पहाड़ियों का दृश्य अलौकिक छटा बिखेरता है। कहीं धूप तो कहीं छांव दिखलाई पड़ती हैं। कहीं पानी बरसता है तो कहीं बिना बादल ही बरसात होती दिखलाई पड़ती है। कहीं ओस-कण मोती के दानों से बिखरे पड़े रहते हैं, तो कहीं सूर्य की किरणें उनसे अठखेलियाँ करती हुई सी प्रतीत होती है। सप्त-रङ्गों इन्द्र-धनुष आकाश मण्डल को दो भागों में बाँटता हुआ दिखलाई पड़ता है।

सूर्योदय और सूर्यास्त का दृश्य और भी सुन्दर होता है। प्रातः पूरब-दिशा में खोढ़वा पहाड़ की ओट लेकर जब बाल-सूर्य झाकने लगता है तो दर्शकों का मन मुग्ध हो जाता है। उसकी प्रथम किरणें खोढ़वा ही को अनुरञ्जित करती हैं। उसके बाद धीरे-धीरे पृथ्वी की सतह पर फैलती हुई सोन की धारा पर रत्नराशियों-सी चमकने लगती हैं।

दिवस-वसान के समय वही सूर्य अस्ताचल की ओर गमन करता है। पश्चिम दिशा अनुराग के रङ्ग में रङ्ग जाती है। विन्ध्य श्रेणी से पश्चिम दिशा भी घिरी हुई है। अगोरी का किला अपनी ऐतिहासिक वीरता का मौन-सन्देश देता रहता है। वीर लोरिक ने यहीं युद्ध किया था। एक गजरों के लिए उस युद्ध में लाखों के खून बहे थे, बहकर सोन की प्रखर धारा में प्रवाहित हो गये थे। अस्ताचल-गामी सूर्य जब उस ऊँची पहाड़ी पर जाकर करवटें बदलने लगता है तो ऐसा

प्रतीत होता है जैसे उसकी रक्ताभ किरणें विस्तृत जलराशियों पर क्रीड़ा करती हुई युग-विशेष के सुयश को मतरूप प्रदान करती हुई, जैसे ही रहते हैं। बिजली के रंग-बिरंगे बल्ब रात्रि में और भी छटा बिखेरते हैं, पर इन गरीबों की झोपड़ियों में अन्धेरा, ही छाया रहता है। आज भी अधिक से अधिक वे ढेबरी ही जलाते हैं। जाड़े के दिनों में ठिठुरते उनके बच्चे आग तापकर रात काट लेते हैं। एक ओर उन सरकारी भवनों में होती है रंगरेलियाँ, उनमें रहने वाली स्वर्ग की अप्सराएँ करती हैं अठखेलियाँ और दूसरी ओर इन गरीबों की पत्नियाँ भूनती हैं मछलियाँ और भूख से छटपटाते अपने नन्हें-मुन्नों को थपकियाँ देकर सुलाने में ही व्यस्त रहती है।

यहाँ की कितनी अच्छी होती है चाँदनी रात ! धवल-चांदनी, पत्र-पुष्पों, लताओं तथा शोण की जलधाराओं पर पड़कर सारे वातावरण को स्निग्ध बना देती है। लगता है आकाश से पृथ्वी-मण्डल तक श्वेत चादर ही बिछ गयी हो अथवा वसुन्धरा ही नववधू-सी श्वेत वस्त्रावेष्टिता हो अनगिनत-अभिलाषाओं का करवट ही बदल रही हो अथवा शंकर ने ही भस्म लगाकर अपने शरीर का विस्तार कर लिया हो अथवा यह कि इन निष्ठुर आदिवासियों की धवल कीर्ति ही मूर्तिमान हो उठी हो।

गर्मी के दिनों में यहाँ भीषण गर्मी पड़ती है। धूप के कारण ये चट्टानें जब तड़पने लगती हैं तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है। इसीलिये यहाँ के रहने वाले प्रायः काले-कलूटे तथा भद्दे आकार-प्रकार के होते हैं। इस भीषण गर्मी में भी ये बेचारे बनवासी-आदिवासी घरों के अभाव में जंगलों, पहाड़ों, में रहते हैं। लकड़ी काटने या जंगली जानवरों का शिकार करते हैं। इनके नन्हें-मुन्ने बच्चे शोण नदी में छोटी-छोटी नावें लेकर या वैसे ही, चिल-चिलाती दुपहरी में मछलियाँ मारते हैं। उनकी जीविका के ये ही मुख्य साधन हैं।

यहाँ की वसन्त-ऋतु सुखद होती है। पक्षियों का कलरव, नदी का मंद-मंद प्रवाह एवं कल-कल निनाद तितलियों का रंग-विरगें फूलों पर इठलाना, अठखेलियाँ करना, भ्रमरों का मधुर गुन्जार करना, शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन का सतत प्रवाहित होना आदि सभी सहृदय के मन को मोहित कर लेने वाले होते हैं।

कठिनाइयाँ जो भी हों, पर धन्य है यहाँ के रहने वालों का जीवन, जिनमें त्याग, तपस्या, संतोष, आत्म-विश्वास और क्या नही है। ये वाल्मीकि, अगस्त्य के वंशज हैं। फिर इनके सरकार भी इन्हीं के अनुरूप क्यों न हों। कभी-कभी

कितना अच्छा लगता है, इनके साथ रहना, इनसे बातें करना, इनके साथ बैठकर भोजन करना, इनकी बातें तथा इनका गाना-बजाना सुनना, इनकी संस्कृति से परिचित होना। कितना अच्छा लगता है, इनका वैसी, मछुओंकी-सी जिन्दगी जीना पर कभी-कभी यहाँ वर्षा के दिन तो सुखद होते ही हैं, जाड़े के दिन भी कम सुखद नहीं होते वर्षा-काल का अन्त होता है। बादल हटने लगते हैं। उनके स्थान पर कुहरा छाने लगता है। जाड़े के दिनों में कभी-कभी कुहरा इस तरह छा जाता है कि मार्ग ही अवरुद्ध हो जाता है। वृक्षों तथा लता-कुञ्जों पर वरसता कुहरा बरसात का ही सुख देता है। सूर्य की किरणें उसे तितर-बितर कर देती है। विखरे ओस के कण सूखने लगते हैं मानों किरणें उन्हें चाट जाती हैं अथवा वाल-रवि ही पथिक बनकर रत्न-राशियों के भ्रम से उन्हें वटोर लेता है। हरित भूमि पर फैली पोताभ किरणें ऐसी लगती हैं। जैसे मानो किसी विन्ध्यवासी तपस्वी ने अपने वस्त्रों को सूखने के लिए फैला दिया हो।

इस सोन घाटी में रहते हैं आदिवासी। इसी तलहटी में बनी है उनकी झोपड़ियाँ। गोंड़, माझ, वेंगा, धांगर आदि जातियाँ मछली मारकर या वन के फल-फूलों को खाकर अपनी जीविका चलाता है। प्रकृति का यह अनन्त वैभव या सरकारी तथा बिड़ला बन्धुओं के कारखाने, सब उनके लिए व्यर्थ है। वे बेचारे तो भूखे पेट ही रहते हैं। उनके वच्चे तथा स्त्रियाँ भूखे बने रहकर या हल्के मैले-कुचैले कपड़े पहनकर किसी प्रकार दिन काट लेते हैं। पृथ्वी का सारी भोग सामग्री इनके लिए व्यर्थ है। वहीं पास में वसा है, गुमा जहाँ विजली के यन्त्र सदा चलते हैं।

उपसंहार

उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र इलाहाबाद की ओर से एक एसाइन्मेंट मिला था। केन्द्र ने मुझे सर्वेक्षण अधिकारी के पद पर नियुक्त कर दिया और एक सर्वेक्षक (श्री अनिल पाठक) साथ देकर कहा सीधी–सरगुजा, रोहतास पलामू, मिर्जापुर-सोनभद्र का सम्पूर्ण सांस्कृतिक सर्वेक्षण कर डालिए। मैंने इस कठिन कार्य को अपने हाथ में ले लिया और साढ़े तीन वर्षों में उसे पूरा करके साढ़े सात सौ पृष्ठों की टंकित सामग्री लगभग डेढ़ हजार चित्रों, डाइग्राम, मानचित्र के साथ केन्द्र में जमा कर दिया जो फिर हाल सरकार के हर कार्य की ही तरह वह भी हो गया है।

इसी बीच पैंतीस-चलासी बार सीधी की यात्रा हमें करनी पड़ी थी बहुत सारे रोमांचक संस्मरण हैं जिन्हें फिर कभी सुनाऊँगा। हाँ, इतना जरुर है कि सोन हमें सतत प्रवाहित रहने की प्रेरणा देती है। इसके भीतर जीव हैं, इसके तटों पर जीवन है। जीवन की सरसता-समरसता है। काश प्रसाद जी यहाँ रहे होते। तो एक कामायनी और रची गयी होती सोन के दोनों तटों पर अमरकण्टन से लेकर पटना में गंगा में विलीन हो जाने तक अगणित तीर्थ हैं, मन्दिर हैं, आदिम गुहागृह हैं, आदिम आदिवासी जातियां हैं, अगणित वनस्पतियां, जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े संस्कृतियां हैं। इन संस्कृतियों का न जाने कितनी बार उत्थान-पतन हुआ है जिसका साक्षी है चोपन राबर्ट्सगंज मार्ग पर सलखन के पास का जीवाश्मों का ढेर। कहते हैं साढ़े सात अरब वर्ष यह पुराना है। दुर्ग है। लोरिक पत्थर है। कुड़ारी का शक्तिपीठ है। द्वितीय काशी तो है ही। शिवद्वार शतद्वारी महांव के खण्डहर हमसे हमेशा कुछ कहते रहते हैं जिनकी भाषा समझने के लिए हमें अपनी समझ बढ़ानी होगी बस।

●

हमारे लोकप्रिय प्रकाशन

1—लोरिकायन (लोक-महाकाव्य) (पुरस्कृत) नामितराहुल सांकृत्यायन (पुरस्कार)	300.00
2—लोरिकायन एक अध्ययन (विद्यापति पुरस्कार)	100.00
3—हिन्दी साहित्य और मिर्जापुर (राजकीय आर्थिक सहायता से प्रकाशित)	90.00
4—आदिवासी जीवन : जनजातीयकला-संस्कृति का परिचय	100.-.00
5—लोकवार्तानिवन्धावली (पुरस्कृत) : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (पुरस्कार)	100.00
6—करमा (आदिवासी गीतों का संग्रह) भूमिका, भावार्थ सहित	60.00
7—शैलाश्रित गुहाचित्र (पुरस्कृत : रामनरेश त्रिपाठी पुरस्कार)	100.00
8—ऐगो रहनऽ राजा (लोक-कथाओं का संग्रह)	7.00
9—कजरी मिर्जापुर सरनाम:गम्भीर भूमिका, भावार्थ, नोटेशन सहित	80.00
10—एक था लोरिक एक थी मंजरी : रुचिकर उपन्यास	60.00
11—पर्यावरण निवन्धावली	40.00
12—सिख धर्म दर्शन	30.00
13—ठाकुर प्रसाद सिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	60.00
14—यह सोनभद्र है	15.00
15—मध्योत्तर भारत के लोकनाट्य नृत्य : पुरस्कृत (रामनरेश त्रिपाठी पुरस्कार)	50.00
16—झंझरे गेड़ुलवा गंगाजल पानी (संस्कार तथा अन्य लोकगीतों का शब्दार्थ, भावार्थ भूमिका सहित संग्रह)	100.00
17—गाँधी : लोक-दर्शन	100.00
18—लोकनाट्यमंच की पीठिका	100.00
19—स्वतंत्रता संग्राम के स्वर	100.00
20—विजयमल संपादित	60.00
21—झामदास बाबा कृत रामार्णव : संपादित	150.00

सभी के लेखक संपादक डॉ० अर्जुनदास केसरी (राष्ट्रपति पुरस्कार सहित अन्य अनेक पुरस्कारों से सम्मानित)

प्राप्ति-स्थान
लोकरुचि प्रकाशन
सिनेमा रोड, राबर्ट्सगंज, सोनभद्र

सचिव
लोकवार्ता शोध संस्थान
राबर्ट्सगंज, सोनभद्र

स्वर्ण जयन्ती पर विशेष

स्वतंत्रता संग्राम में जनपद सोनभद्र का योगदान

—अजय शेखर

जगत्‌जननी माँ विन्ध्यवासिनी के पावन चरणों की छत्रछाया में बसे, पनपे और फले-फूले जनपद मीरजापुर का दक्षिणांचल जो आज सोनभद्र जनपद है और विद्युत, कोयला, अल्युमिनियम, सीमेन्ट एवं रसायन आदि उद्योगों की राजधानी भी, तब इस जनपद में ये उद्योग नगरियाँ नहीं बसी थीं। नव-निर्माण से दूर, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक उपलब्धियों से अलग-थलग कृत्रिमता के दमघोंटू वातावरण से परे यह जनपद प्रकृति का उन्मुक्त क्रीडास्थल था। पर्वतमालाओं से आच्छादित सोन, रेंड़, बिजुल, कनहर, सतवाहिनी, पाण्डु, घाघर, करमनासा तथा बेलन आदि नद-नदियों से सिंचित, वनों से भरे-पूरे इस जनपद की गौरव-गाथाओं का आज भी अगोरी और विजयगढ़ के दुर्ग साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए खड़े हैं।

शिवद्वार, गोठानी, अगोरी, कुड़ारी, गौरीशंकर, बरैला, पंचमुखी कण्डाकोट, शिवपुर, नलराजा, अगला भाग ज्वालामुखी (शान्ति नगर) आदि स्थानों के मन्दिर एवं मूर्तियाँ, पर्वतमालाओं की शिलाओं पर अंकित एवं चित्रित लेख एवं चित्र आज भी इस जनपद की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं अध्यात्मिक चेतना का वर्णन कर रहे हैं।

झरनों, नदियों के कल-कल निनाद से गूंजता यह वन क्षेत्र अपने में असीम रम्यता समेटे था। कभी मेघों की तर्जनाओं तो कभी शेरों की गर्जनाओं से आकाश भर उठता। सहज, सरल एवं निश्छल गिरिवासी हाथ में तीर-धनुष लिए वनों में निर्भय विचरते रहते। आखेट और वनों के फल-फूल और कन्द-मूल से जीवन का निर्वाह होता था। थोड़ी बहुत भूमि पर खेती-बारी भी कर लेते थे।

इस जनपद की घाटियों, बस्तियों में जहाँ एक ओर नाचते मयूरों की थिरकनों, चौकड़ियाँ भरते मृगों के झुण्डों, लहलहाते हरे-भरे वृक्षों

की डालियों पर बैठे; चहकते, फुदकते खग-वृन्दों की स्वर-लहरियों, वनफूलों की मादक गन्धों के हिंडोले में झूलती हवाओं से मन झूम उठता था, वहीं दूसरी ओर दासता की ठोकरों से कराह भी उठती थी।

क्या जंगल, क्या गाँव ! लोकगीतों, लोकवाद्यों एवं लोकनृत्यों की थिरकनों की गूँज मन की पीड़ा हर लेती थी। बस्तियों में अभावग्रस्त पर लिपे-पुते घर-आंगन निर्धनता किन्तु शुचिता की ओर इंगित करते थे। गाँवों में संझवाती के साथ चौपालें सजतीं, भजन-कीर्तन होता। मादल की थाप पर घुंघरू थिरकते किन्तु दासता का आतंक चैन नहीं लेने देता था। हर ओर निरंकुश शासन का खौफ छाया रहता था। अपार खनिज सम्पदा से सम्पन्न यह लगभग भूख, गरीबी, अशिक्षा और अभावों के शिकन्जों में जकड़ा जा रहा था।

सन् 1857 का महासमर, जब पूरा देश अंग्रेजी दासता को उखाड़ फेकने के लिए कदम बढ़ा रहा था तो लगने लगा कि भारतीय सैनिकों के विद्रोह की ज्वाला में अंग्रेजी शासन जल कर भस्म हो जायेगा। स्वतंत्रता के दीवाने जान हथेली पर लिए इस महासमर में कूद पड़े।

सन् 1857 में देश अंग्रेजी-दासता से मुक्ति पाने के लिए बेचैन हो उठा था। स्वतन्त्रता के सिपहसालार बाबू कुँअर सिंह ने करमनासा नदी पार कर पन्नूगंज (सोनभद्र) में अपने साथियों के साथ प्रवेश किया। सोनभद्रवासियों के मन में सुगबुगाहट हुई। अंधियारे में प्रकाश की एक किरण फूटी। बाबू कुँवर सिंह ने अंग्रेज भक्त राजा और जमींदारों से खर्चे के लिए धन वसूला तथा अंग्रेजी-सम्पत्ति लूटते बरबाद करते टाँड़केडौर (रावर्ट्सगंज) शाहगंज, घोरावल होते इलाहाबाद की ओर चले गये।

बाबू कुंवर सिंह एवं उनके सहयोगियों की सहायता से लक्ष्मन सिंह ने विजयगढ़ राज्य पर कब्जा कर लिया तथा राजा हो गए। विजयगढ़ की स्थिति अंग्रेजों के लिए इतनी बिगड़ गई की विजयगढ़ जाने पर अंग्रेज तहसीलदार को वहाँ से भाग कर अपनी जान बचानी पड़ी। इससे अंग्रेजी शासन में घबड़ाहट बढ़ गई। विजयगढ़ पर पुनः कब्जा प्राप्त करने के लिए पूरी तैयारी के साथ अंग्रेज कलेक्टर टकर ने जनवरी 1858 में विजयगढ़ पर चढ़ाई की। लक्ष्मन सिंह एवं उनके सहयोगी टक्कर न ले सके और उन्हें भागना पड़ा। अंग्रेज कलेक्टर

टकर ने लक्ष्मन सिंह और उनके साथियों का पीछा किया पर लक्ष्मन सिंह भागने में सफल हो गये और पकड़े न जा सके।

दानापुर के विद्रोही सैनिकों ने भी सोनभद्र में प्रवेश किया था सरकारी सम्पत्ति की लूट-पाट करते उत्तर की ओर बढ़े। हजारीबाग से रामगढ़ बटालियन के बागी सैनिकों ने पलामू की ओर से सोनभद्र जनपद में प्रवेश किया। सिंगरौली के राजा ने विद्रोही सैनिकों की सहायता की। विद्रोही सैनिकों ने कोटा और बीना में अंग्रेजों की कोयला की खानों तथा उनके मकानों को तहस-नहस कर दिया। यह सब होते हुए भी सन् 1857 का स्वतंत्रता संग्राम विफल हो गया। अंग्रेज स्वतंत्रता के इस महासमर को जीतने में सफल हो गये। आशा की ज्योति तो जली थी, बुझ गई। अंग्रेजी दासता की जकड़न और तेज होती गई। सरकारी लुटेरों और अंग्रेजी शासन के चाटुकार राजाओं, जमींदारों का खौफ बढ़ने लगा। गुलामी की जंजीरों में जकड़ा, असहाय सोनभद्रवासी आँसू बहाता रहा।

पहला विश्वयुद्ध 1 अगस्त 1914 को छिड़ गया। ब्रिटिश राज्य होने के कारण भारत को भी युद्ध में शामिल कर लिया गया। भारतीय सैनिकों ने जिस बहादुरी के साथ ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की थी आशा थी कि ब्रिटिश हुकूमत भारत के साथ उदार रवैया अपनायेगी किन्तु भारत को अंग्रेजी हुकूमत ने नृसंश, दमनकारी रोलेट एक्ट देकर भारतीयों के मन में नफरत एवं आक्रोश की ज्वाला भड़का दी।

रोलेट की अध्यक्षता में बनी समिति की संस्तुति पर 18 मार्च 1919 को कानून पास कर दिया गया जिसे रोलेट एक्ट कहा गया। इस कानून के अन्तर्गत भारतवासियों का खुलकर दमन और उत्पीड़न करने का विशेष अधिकार अंग्रेजी शासकों को मिल गया।

सरकार की इस दमनकारी नीति एवं रोलेट एक्ट के विरोध में 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जलियावाला बाग में सभा बुलाई गई। सभा में करीब 20 हजार व्यक्ति शामिल हुये। शान्तिपूर्ण ढंग से सभा चल रही थी। सभा की सूचना पाते ही अंग्रेजी हुकूमत पागल और बदहवास हो उठी। सिपाहियों तथा बारूद बन्द गाड़ियों के साथ सभास्थल पर पहुँच कर जनरल डायर तब तक गोलियाँ चलवाता रहा जब तक गोलियाँ खतम न हो गईं। इस हत्याकाण्ड में सैकड़ों लोग मारे

गये तथा हजारों व्यक्ति घायल हुये। इस बर्बर हत्याकाण्ड से देश की आत्मा चित्कार उठी। पूरे देश ने अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने का दृढ़ निश्चय कर लिया। इस बर्बर हत्याकाण्ड ने महात्मा गांधी को अंग्रेजी राज्य का प्रबल शत्रु बना दिया।

20 मार्च, 1920 को महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन की रूपरेखा प्रस्तुत की। अंग्रेजी हुकूमत की नृशंश एवं दमनकारी नीतियों की लपटों में झुलसता भारतवासी अब एक भी पल के लिए अंग्रेजी दासता सहन करने के लिए तैयार नहीं था। महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन का बिगुल बजते ही सारा देश असहयोग आन्दोलन में कूद पड़ा।

उन दिनों मीरजापुर जिला मुख्यालय था। राबर्ट्सगंज (सोनभद्र) से आने-जाने के लिये बीहड़ जंगलों के बीच से हिंसक वन-पशुओं से भरा हुआ रास्ता था। दुद्धी तहसील में जाना जोखिम भरा कार्य था। जनपद में एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिये कँकरीली-पथरीली पगडण्डियाँ थीं। राहों में नदी-नाले, जंगल, पहाड़ पड़ते। जंगली जानवरों का भय बना रहता। अंग्रेजी सरकार और उसके आतंक से सहमा, डरा, अशिक्षित, भूख और गरीबी की मार से जख्मी सोनभद्रवासी छटपटा रहा था। जब महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन का शंखनाद सोनभद्रवासी के कानों में पड़ा तो फिर भला प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में पला सोनभद्रवासी कैसे चुप बैठता।

मीरजापुर में पं० हनुमान प्रसाद पाण्डेय (मकरीखोह), बैरिस्टर यूसुफ इमान (वासलीगंज) श्री भूदेव (बिसुन्दरपुर), पं० सीताराम द्विवेदी, पं० महादेव चौबे (डंकिनगंज) श्री विश्राम सिंह (मगरदहा) एवं श्री उपेन्द्र नाथ बनर्जी आदि स्वतंत्रता हासिल करने का दृढ़ निश्चय एवं संकल्प तथा हौसला लिये आन्दोलन में सक्रिय हो उठे। ईस्ट इण्डिया रेलवे में सहायक यार्ड मास्टर के पद पर कार्य करते हुये भी श्री जे० एन० विलसन ने मजदूर आन्दोलन में भाग लिया जिसके कारण उन्हें नौकरी से हटा दिया गया। वे भी सन् 1922 में कांग्रेस में शामिल होकर स्वतंत्रता की लड़ाई में सक्रिय हो उठे। कौन सी ताकत थी जो रोकती इन आजादी के दीवानों को जो सरफरोशी की तमन्ना दिल में लिये बैठे थे।

सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन में अभाव, अशिक्षा, गरीबी और आतंक के बावजूद सोनभद्र जनपद में भी 'सर पर बाँधे कफनियाँ हो' शहीदों की टोली निकली। दुद्धी तहसील में सर्वश्री रामनन्दन पाण्डेय (धनौरा), ईशूमसीह (दुद्धी), जोखन तेली (दुद्धी), महावीर प्रसाद गुप्ता (दुद्धी), सैयद सेखावत हुसैन (दुद्धी), सुखलाल खरवार (दुद्धी) एवं पूरनमासी (बिड़र) तथा राबर्ट्सगंज तहसील में श्री महादेव चौबे (गुरुपरासी) सोवरन बियार (परासी) आदि सक्रिय हो उठे। सन् 1921 के आन्दोलन में भाग लेने के कारण सर्वश्री पूरनमासी, सुखलाल खरवार सैयद सेखावत हुसैन, जोखन तेली को सन् 1921 में तथा ईशूमसीह महावीर प्रसाद गुप्त, रामनन्दन पाण्डेय को 1922 में एक-एक वर्ष की सजा हुई।

सन् 1930 में नमक सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। नमक सत्याग्रह आन्दोलन में दुद्धी तहसील में सर्वश्री सुखलाल खरवार (दुद्धी) श्री रामेश्वर खरवार तथा राबर्ट्सगंज तहसील से सर्वश्री महादेव चौबे (परासीगुरु), श्री सोवरन बियार (परासी), बलराम दास (राबर्ट्स-गंज), तपेश्वरी सिंह (ऊँचीकलाँ), चन्द्रमा प्रसाद (राबर्ट्सगंज) गिरफ्तार किये गये तथा सभी को सजा हुई। सन् 1930 में श्री लाल बहादुर पाठक (रतवलकलाँ) कांग्रेस में शामिल हुये और सक्रिय हो गए।

सन् 1932 में लगानबन्दी आन्दोलन चला। 1932 के लगानबन्दी आन्दोलन में ईशू मसीह दुद्धी से तथा सर्वश्री महादेव चौबे, तपेश्वरी सिंह लालबहादुर पाठक (राबर्ट्सगंज) से गिरफ्तार किये गये और सभी को सजा हुई।

सन् 1936 में राबर्ट्सगंज में पं० जवाहर लाल नेहरू का आगमन हुआ जिसके कारण पूरे जनपद में उत्साह की लहर व्याप्त हो उठी। स्वतंत्रता संग्राम के सैनिकों में सम्पर्क बढ़ता गया। आम जनता का श्रद्धा स्नेह एवं सहयोग इन स्वतंत्रता के दीवानों को प्राप्त था ही। ये साधनहीनता एवं सम्पर्क में आने वाली बाधाओं के होते हुये भी आजादी की लड़ाई में जूझते थे। स्वतंत्रता के दीवाने मार्ग के सभी अवरोध तोड़ते भूखे-प्यासे रहकर कँकरीले-पथरीले जोखिम भरे रास्तों से आते-जाते और एक दूसरे से सम्पर्क बनाए रखते थे !

सर्वश्री बैरिस्टर यूसुफ इमाम, हनुमान प्रसाद पाण्डेय, भूदेव दुबे, विश्राम सिंह, विजयानन्द मिश्र आदि से रामनन्दन पाण्डेय, महावीर प्रसाद गुप्ता, ईशू मसीह पं. महादेव चौबे आदि का विचार-विमर्श चलता रहता।

स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने के कारण स्व. ब्रजभूषण मिश्र ग्रामवासी जी भी वाराणसी स्टेट से निष्कासित कर दिये गये थे तथा उनकी पूरी संपत्ति जप्त कर ली गई। ये भी मीरजापुर आकर बस गए। आजादी के जंग में सक्रिय तो थे ही। पं० महादेव चौबे, ईशू मसीह रामनन्दन पाण्डेय, बलरामदास, तपेश्वरी चौधरी आदि की सक्रियता से सोनभद्र जनपद में मीरजापुर से श्री ब्रजभूषण मिश्र ग्रामवासी, श्री ओंकारनाथ उपाध्याय एवं अन्य कांग्रेस जन आते-जाते रहते थे। जिससे बराबर सम्पर्क बना रहता था।

सन् 1941 में व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। पं० महादेव चौबे के कुशल नेतृत्व में सोनभद्र जनपद ने आन्दोलन को बल प्रदान किया। आजादी के सपने को साकार रूप देने के लिये सन् 1941 के व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में सोनभद्र जनपद से सर्वश्री अक्षैवर उपाध्याय, अभिराज सिंह, अली हुसेन, अवधबिहारी लाल श्रीवास्तव, इन्द्रजीत सिंह, श्रीकान्त शर्मा, कालीचरण शुक्ल, कालीचरण सिंह, काशी प्रसाद सिंह, किस्मत राम, गनेश सिंह, गनेश प्रसाद, गुलाब प्रसाद दुवे, गौरीशंकर देव पाण्डेय, चन्द्रशेखर वैद्य, जगन्नाथ साहू, जैकरन सिंह, डोंगर मियाँ, झिंगई पनिका, तकिल हुसेन, दीनानाथ चौबे, देवेन्द्र नाथ चौवे, नन्हकू रामहज्जाम, प्रभाशंकर चौबे, ब्रजभूषण देव पाण्डेय, बालगोविन्द पाण्डेय, बालगोविन्द शर्मा, वेगू प्रसाद, भागवत प्रसाद, भगवती, भगवती प्रसाद तिवारी, भगवती प्रसाद श्रीवास्तव, भूलन सिंह, मंगल बियार, महादेव चौबे, महावीर प्रसाद गुप्त, मुकुन्द लाल सिंह, मुकुटधारी शर्मा, यज्ञनारायण सिंह, रघुवीर राम पाठक, राजेश्वर प्रसाद पाण्डेय, राधा प्रसाद शर्मा, राधाकान्त, रामखेलावन सिंह, रामदेव नारायण सिंह उर्फ फुन्नन सिंह, रामनाथ कहार रामनाथ पाठक, रामप्रताप शुक्ल, रामप्रसाद राम मनोहर सिंह, राम मनोहर शुक्ल, रामलखन त्रिपाठी, रामलखन सिंह, रामसखी सिंह, रामहरख खरवार, लक्ष्मण सिंह, लाल बहादुर पाठक, लाल सिंह,

विभुति नरायण सिंह, विशष्ठ राम दुवे, विन्द्रा प्रसाद, विश्वनाथ प्रसाद अग्रवाल, विश्वनाथ प्रसाद सिंह, विश्वनाथ सिंह, विष्णुराम धाँगर, शनिश्चर राम खरवार, शम्भूनाथ कुशवाहा, शिववरन सिंह, सदानन्द सिंह सिद्धिनाथ मिश्र, सुखलाल खरवार, हरिवंश धांगर, त्रिगुणीनाथ चौबे आदि स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों ने हिस्सा लिया और गिरफ्तार हुए तथा सजा पाई।

सन् 1942 में कांग्रेस ने पूर्ण आजादी प्राप्त करने के लिए 'अंग्रजों भारत छोड़ों' का नारा बुलन्द किया। भारत छोड़ो आन्दोलन में सोनभद्र जनपद से सर्वश्री अभिराज सिंह, अम्बिका प्रसाद शुक्ल, अली हुसैन, अवध बिहारी लाल श्रीवास्तव, इन्द्रमनी, काशी प्रसाद सिंह, किस्मत राम, केशरी प्रसाद द्विवेदी, कृष्ण सेवक मिश्र, गनेश सिंह, गुलाब प्रसाद दुवे, ठाकुर प्रसाद सिंह, तव्विल हुसैन, द्वारिका प्रसाद, देवमुनी, पंचकौड़ी खान उर्फ हयात मुहम्मद खान, ब्रजभूषण देव पाण्डेय, बलराम दास, बेनीमाधव देव पाण्डेय, भगवत प्रसाद तिवारी, भागवत प्रसाद, महादेव चौबे, महावीर प्रसाद गुप्त, रघुवीर राम पाठक, श्रीमती राजेश्वरी देवी, राधा प्रसाद शर्मा, रामखेलावन गोसाई, रामनाथ पाठक, राममनोहर त्रिपाठी, राममनोहर सिंह, राममनोहर शुक्ल, रामलखन त्रिपाठी, रामस्वरूप, रामेश्वर खरवार, लक्ष्मन सिंह, लाल बहादुर पाठक, विश्वनाथ प्रसाद अग्रवाल, विश्वनाथ सिंह, शंकर प्रसाद माझी, शिवनन्दन तेली, शिवनाथ प्रसाद माझी, सीताराम चौबे हरिहर पाठक आदि ने पूरे जोश के साथ भाग लिया तथा गिरफ्तार हुए एवं नज़र बन्द किये गये।

अंग्रेजों पर क्रांतिकारियों एवं असहयोग आन्दोलन का दबाव बढ़ता जा रहा था तथा प्रबल जनाक्रोश की ज्वाला धधक रही थी। अंग्रेजी हुकूमत को भारत में कायम रख पाना ब्रिटेन के लिये असम्भव हो गया था। अतः हार कर अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ।

●

लोकवार्ता शोध पत्रिका

(त्रैमासिक प्रकाशन)

लोकवार्ता शोध संस्थान, राबर्ट्सगंज, सोनभद्र (उ० प्र०)

सदस्यता प्रपत्र

महोदय,

कृपया हमारा नाम - पता अपनी पत्र सूची में दर्ज करके डाक द्वारा भिजवाने का कष्ट करें।

नाम ....

पूरा पता ....

....

....

.... पिन ....

एक वर्ष का शुल्क 80-00 रुपया, आजीवन 1100-00 रुपया बैंक ड्राफ्ट/मनीआर्डर रसीद नं० दिनांक द्वारा लोकवार्ता शोध पत्रिका के नाम प्रेषित है।

भवदीय

हस्ताक्षर :

दिनांक :

- शुल्क चेक से भेजना चाहें तो बैंक कलेक्शन चार्ज 20/- अतिरिक्त जोड़कर चेक बनाइये।

पुस्तक समीक्षा

नयी पुस्तकें :

कृष्ण लीला गीत : श्री रामनारायण अग्रवाल

संपादक : श्री कपिल तिवारी, नवल शुक्ल

सहयोग : श्री अशोक मिश्र

प्रकाशक : मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद्, भोपाल

संस्करण : 1997 मूल्य : 50-00 रु०

श्रीकृष्ण लीला पुरुषोत्तम हैं। उन्होंने अपनी लोक हितैषिणी लीलाओं से सम्पूर्ण जन-मानस को अनुप्राणित किया है। कृष्णाश्रयी शाखा के शताधिक कवियों ने उनकी लीलाओं का गान स्वान्तः सुखाय किया था जो सर्वसुखाय हो गया। उस समय के कवियों के पास लेखन-सामग्री नहीं थी और न छापेखाने ही थे कि उनकी रचनाएँ सुरक्षित होती जातीं। इसी कारण लाखों लाख रचनाएँ या तो लुप्त हो गयीं अथवा लोककण्ठ परम्परा से अद्यावधि संतों-महात्माओं के पास पड़ी हुई हैं। महाकवि सूरदास रचित 'सूर सागर' के सवा लाख पदों में से कुछ हजार पद ही प्राप्त हो पाये हैं। श्री रामनारायण अग्रवाल शोधी, संग्रही, विद्वान् तथा रचनाकार हैं। वे कृष्ण-साहित्य के अप्रतिभ मर्मज्ञ हैं। उन्होंने इस कृति में वाचिक परम्परा से प्राप्त श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित उन गीतों का संग्रह किया है जिनके रचनाकारों तक का पता नहीं है। ऐसा करके उन्होंने हिन्दी, ब्रज साहित्य संस्कृति का बड़ा उपकार किया है।

इस संग्रह में श्रीकृष्ण जन्म, पलना, बाललीला, भोजन, मुरली-वादन, परिक्रमा, यात्रा, छेड़छाड़, आमंत्रण, मल्हार, अनुराग, दधिदान, उलाहना, गोचारण, कालीदह लीला, आसक्ति, विवाह, लग्न, गाली, तुलसी पूजा, दांतुन, गोवर्द्धन लीला, चीर लीला, महारास, वियोग, उद्धव लीला, बारहमासी और होली आदि से सम्बन्धित गीतों का

संग्रह भावार्थ और आवश्यक टिप्पणियों के साथ किया गया है जिससे सभी पद बोधगम्य हो गये हैं।

इन गीतों का गायन-वाचन धार्मिक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, दैनिक जीवन में भी उपयोगी है। लेखक अपनी सारगर्भित भूमिका में लिखता है—"बचपन में हमने अपनी वृद्धा दादी को प्रभाती के रूप में प्रतिदिन राधाजी और कृष्णजी का कलेऊ गाते सुना है। उनका विश्वास था कि इन कलेउओं के गायन से कभी भी घर में अन्न-वस्त्र का अभाव नहीं हो सकता, परन्तु अब यह कलेऊ दैनिक जीवन में नहीं गाये जाते।" इसी प्रकार कृष्ण-चरित्र से सम्बन्धित जितने भी प्रसंग हैं, सबका जीवन में महत्व है। सबके अन्दर कोई न कोई मूल्य निहित है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, करुणा, वीरता, विनम्रता, परोपकार, पर्यावरण, परहित-रक्षा, गो-सेवा, गोरस-पान, भाई-चारा, उदारता, शक्ति संचय, लोक-रक्षा के अगणित मूल्य उभड़ते हैं जिनका आज के परिवेश में बड़ा महत्व है। ये गीत घर-घर गूंजने लगें तो घर-समाज का वातावरण प्रदूषित होने से बच सकता है।

इन दुर्लभ पदों को हम सब तक पहुंचाने के लिए श्री रामनारायण अग्रवाल की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। इस महायज्ञ के लिए मैं उन्हें प्रणाम करता हूं।

अर्जुनदास केसरी
संपादक

× × ×

(1) सुखी और सफल कैसे ?
(2) डॉ० भीमराव अम्बेदकर

लेखक : डॉ० हरिहर प्रसाद गुप्त

परिवर्द्धित संस्करण, सजिल्द 14-00 रु०

प्रकाशक : भाषा साहित्य संस्थान, 147 त्रिवेणी रोड, इलाहाबाद

डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त डॉ० माताप्रसाद गुप्त के अनुज हैं जिनका लोक-साहित्य में अप्रतिभ स्थान है। डॉ० हरिहर प्रसाद गुप्त ने अनेक मोटे-मोटे ग्रंथों की भी रचना की है जिनमें प्रसाद काव्य, प्रसाद अभिधान, वैष्णव कबीर, कबीर काव्य और कामायनी समीक्षा मुख्य हैं।

इधर आप लघु कृतियाँ लिख रहे हैं जिनमें हमारा आहार क्या हो ?, करो या मरो, जवानों से, जीवन की राह चुनें, मानवता की ओर, भाग्य को कैसे बदलें आदि दशाधिक हैं। ये सभी कृतियाँ जीवनोपयोगी, युवकों के लिए प्रेरणा-प्रद, शिक्षाप्रद, ज्ञानवर्द्धक तथा नवीन जानकारियों से भरी हुई हैं।

सन्दर्भित दोनों कृतियों को मैं आद्यन्त पढ़ गया। सुखी और सफल जीवन के लघु लेख धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, अध्यात्मिक सभी दृष्टियों से उपयोगी तथा मन पर स्थायी प्रभाव डालने वाले हैं।

इसी प्रकार 'डॉ० अम्बेदकर' पुस्तक में लेखक ने डॉ० अम्बेदकर के जीवन को मौलिक दृष्टि से देखा है। इसके अध्ययन से अहिंसा, देश-प्रेम, धर्मपरायणता, अछूतोद्धार, समाजवाद, दलित-त्राण, कर्मठता के बीज पाठक के हृदय में अंकुरित होकर उसके जीवन को बदलने की प्रेरणा देते हैं। ये सभी पुस्तकें नवयुवकों, छात्रों के लिए भी उपयोगी हैं तथा संस्थाओं के पुस्तकालयों के लिए संग्रहणीय हैं।

आज के व्यस्त जीवन में इन लघु पुस्तकों की उपादेयता निरंतर बढ़ती जा रही है। साहित्य जगत को ऐसी पुस्तकें देने के लिए डॉ० गुप्त प्रणम्य हैं।

अर्जुनदास केसरी
संपादक

(प्रकाशक, लेखक — समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजें।
—संपादक)

रंगारंग कार्यक्रम : लोकोत्सव, 98

दीपक कुमार केसरवानी

राबर्ट्सगंज (सोनभद्र) स्वतंत्रता की स्वर्ण जयन्ती वर्ष में स्थानीय राजा तेजबली शाह क्लब मैदान में लोकोत्सव 98 के रंगारंग कार्यक्रम का आयोजन लोकवार्ता शोधसंस्थान राबर्ट्सगंज सोनभद्र एवं भारत सरकार, संस्कृति विभाग के सहयोग से आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम का शुभारम्भ आकाशवाणी ओबरा के निदेशक एवं विद्वान डॉ० रजनीश प्रसाद मिश्र द्वारा परम्परागत ढंग से दीप प्रज्ज्वलित कर किया गया और इस दीप को सोनभद्र के जनजातियों द्वारा बनाये गये बाँस की सुन्दर आकर्षक झपोलियों में रखा गया। तत्पश्चात् जनपद सोनभद्र के माटी में जन्मे कलाकारों ने अपने द्वारा निर्मित वाद्ययंत्रों के सुमधुर ध्वनि व आकर्षक नृत्य से वहाँ पर उपस्थित विशिष्टजन एवं दर्शकों को सम्मोहित कर लिया और कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ :—

प्रथम कार्यक्रम—प्रस्तुतकर्ता :—श्री सन्तोष व उनके साथी द्वारा ज्वालादेवी पूजा नृत्य सर्वप्रथम रंगमंच पर कलाकार एवं उनके साथियों द्वारा 'मइहरमाई की जय, विन्ध्यवासिनी माई की जय, ज्वालामुखी माई की जय, कुड़ारी देवी की जय, बन्सरा माई की जय' का नारा लगाते हुए जनजातियों का एक लम्बा जूलूस अपने हाथों में मोरपंख, वाना, सांग त्रिशूल (लोहे का बना तीखा छड़) नेतृत्वकर्ता के हाथ में एक मोटी छड़ी तथा दूसरे हाथ में हिरण की तिखी सींग लिये हुए और ओझा के हाथ में जईया (जमे हुए जौ की हड्ड़ियाँ) दूसरे हाथ में खप्पर लिये जिसमें से आग का धुआँ निकल रहा था, अपने परम्परागत वाद्ययंत्र ढोलक, झाल, मजीरा, आदि लेकर देवी के चरण में ज्वालामुखी नृत्य अथवा देवी नृत्य को "तोर गहना हो मइया तोर गहना" के साथ आरम्भ किया भक्तिरस में डूबे ये कलाकार इतने भाव विभोर हो गये कि इन्हें कुछ होश न रहा। कलाकार गुरदम भांजते हुए भयानक हुंकार भरकर भयानक ढंग से आँख बन्द कर लेता था, फिर खप्पर लेकर दो

कलाकार नाचते थिरकते जीभ निकाल कर बीच में आया और पावों से उछल कर नृत्य करनें लगा इसके बाद वाना त्रिशूल, सांगो वाला सामने आया, उसे आकाश में भांजते हुए उसकी जीभ को छेदते हुए गले के आर-पार (बगली) कर दिया और एक कलाकार ने अपनी बाह में त्रिशूल पिरो लिया और एक कलाकार ने अपने जीभ में पिरो लिया। आश्चर्य कि इन कलाकारों के घावों से कोई खून नहीं टपका। सभी भक्त कलाकार वृत्त या अर्द्धवृत्त बनाकर झूमकर गाते रहे। एक कलाकार हू हू की हुंकार करते हुये बन्दर की तरह कलाकारों के पैरों के बीच से निकल कर उछल-कूद रहा था जिससे नृत्य की रोचकता और बढ़ गयी। यह नृत्य मुख्य रूप से आदिवासियों की अगरिया जनजाति द्वारा जो मुख्य रूप से (पत्थरों में मिश्रित लोहे को देशी विधि से निकाल कर उससे तीरों व भालों के फलक व अन्य दैनिक जीवन में उपयोग आने वाली वस्तुओं का निर्माण करते हैं) उनके द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह नृत्य नवरात्र के प्रथम दिन व आखिरी दिन रामनवमी को जनपद सोनभद्र के अंचलों में स्थित देवी-मन्दिरों में। इस नृत्य के माध्यम से देवी की स्तुति की जाती है और देवी को प्रसन्न करने के लिये भेड़, बकरी, मुर्गा, भैंस की कहीं-कहीं पर बलि दी जाती है।

द्वितीय कार्यक्रम—सोरठी बृजभार गायन प्रस्तुतकर्ता मुन्नालाल व अन्य साथी सोरठी बृजभार गायन 7 भोजपुरी भाषा में उपलब्ध है और इस पद्धति के गायक अभी तक लोकवार्ता शोध संस्थान के नजर में नहीं आया था परन्तु अथक प्रयासों के बाद इस विधा के गायक को खोजकर मंच पर प्रस्तुत किया गया। इस सोनभद्र की खोज के द्वारा वीर एवं श्रृंगार रस से परिपूर्ण गीत को कलाकारों द्वारा परामपरागत वेषभूषा धारकरण कर प्रस्तुत किया गया यह गीत मुख्य रूप से अकेले अथवा समूह में गाया जाता है।

तृतीय कार्यक्रम—इन्द्रवासी (धरकहरी) नृत्य प्रस्तुतकर्ता रामधनी व अन्य साथी इस कार्यक्रम के प्रस्तुतकर्ता कलाकार अपने परामपरागत वेशभूषा को धारण कर एवं परामपरागत वाद्ययंत्रों डफला, खजड़ी, ढोल, तबला, बासुरी, शहनाई व अन्य वाद्ययंत्रों के साथ अपने पैरों में घुघुरू बाँधे मंच पर उपस्थित हुये। मुख्य कलाकार रामधनी द्वारा "समिरि सुमिरि गीत गावे देवी तोहर सेवा में" प्रस्तुत किया

जिसमें आगे चलकर मानव जीवन के रोजमर्रा के कार्यों एवं देवर भौजाई के मनोविनोद व शरारतपूर्ण (मजाक की दृष्टि से) वर्णन किया गया है यह नृत्य सबसे आकर्षक था और इस नृत्य में वृद्ध नौजवान इत्यादि कलाकारों ने भरपूर उत्कृष्ट कला का प्रदर्शन किया। सुमधुर वाद्ययंत्रों व आकर्षक नृत्य शैली ने दर्शकों का मन मोह लिया। इस नृत्य को आज सजे-सजाये मंच जहाँ पर भौतिक सुविधायें जैसे हाइड्रोजन वल्ब व पक्का मंच, मंच की रंग विरंगी पर्दे की सजावट व अन्य संचार यंत्रों (माइक, स्पीकर) के साथ मंच पर कुछ कठपुतलियों एवं बाँस की बनी टोकरियों, रंग-बिरंगी छोटी-बड़ी साइजों के घड़ों से सजा कर उसे आदिवासी कला में ढालने का प्रयास तो अवश्य था परन्तु खुले आकाश के नीचे अपने निजी जिन्दगी से तनावमुक्त ये आदिवासी कलाकार जब शाम को गाँव के चौपाल या खुले मैदान जहाँ पर कोई बिजली बत्ती नहीं केवल लकड़ी के आग जल रहे हों जिससे रोशनी का काम लिया जाता रहा हो, उस वातावरण में प्रस्तुत ये नृत्य बड़ा ही मनमोहक व लुभावना होता होगा। शहर में जिन्दगी देने वाले साहित्यकार. कथाकार, लेखक मात्र कल्पना ही कर सकते हैं। धंरकहरा भी धरकार शब्द से बना है जिसका अर्थ धरकारों द्वारा किया जाने वाला नृत्य है। धरकार कभी शक्तिशाली जाति थी जिसकी मध्य प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश में तूती वोलती थी। बाद में वे राजा के यहाँ कर-वसूली का कार्य आरम्भ कर दिये क्योंकि वे अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक विश्वासी थे। धरकारों का मुख्य पेशा सूप, वेना, दोना, पत्तल तथा नृत्य में प्रयुक्त होने वाले वाद्ययंत्रों को बनाना व बेचना रहा है। कहीं-कहीं पर वे खेती बारी व पत्थर तोड़कर, मिट्टी खोदकर अपना जिविकोपार्जन करते हैं ये अपने आप को वेणुवंशीय अर्थात वंशी बजाने वाली जाति के नाम से जाने जाते हैं। इनकी कुल 7 कुरिया हैं जो अलग-अलग कार्यों से संबंधित हैं और इनके मनोरंजन का साधन धरकहरी नृत्य है। धरकार अवकास के क्षणों में अपनी बस्ती में नाचकर गाकर अपना मनोरंजन करता है। यह इनका पैतृक जन्मजात पेशा है। पावों में घुघरू बांध कलाकार हाथों में डफली या खजड़ी जो मुख्य रूप से जंगल की लकड़ी अथवा बाँस को मोड़कर उसे बकरा या बकरी के चमड़े से मढ़कर बनाते हैं और जो 1 मीटर व्यास तक का होता है, लेकर बजते हुए जनपद मुख्यालय राबर्ट्सगंज में द्वार-द्वार सड़कों पर, बेबश, लाचार, बूढ़े व

युवा बच्चे कलाकार, जो आज औद्योगिकरण से अपने परम्परागत पेशे से वंचित हो चुके हैं अथवा सोनभद्र के तमाम ग्रामीण शहरों में डफली या खजड़ी बजाते हुए भीख मांगकर खाते नजर आते हैं।

चतुर्थ कार्यक्रम—विजयमल का गायन प्रस्तुतकर्ता रामदेव – इस 65 वर्षीय गायक द्वारा विजयमल के वीरगाथा का आरम्भ रामई से रामवा होला से किया गया इस कार्यक्रम के प्रस्तुतकर्ता कई राष्ट्रीय मंचों पर सफलतापूर्वक विजयमल के गायन का कार्यक्रम प्रस्तुत कर चुके हैं। प्रस्तुत विजयमल वीर रस प्रधान काव्य है, इस काव्य का नायक विजयमल जो एक शक्तिशाली वीर पुरुष है और जो 30 मन के गुल्ली डंडा से खेलकर अपना मनोरंजन करता है और उसके शत्रुओं ने उसके माता-पिता को बंदी बना लिया था, जब उसके खेल को देखते हुए उसके गाँव के लोग उसको ताना देकर उसे शक्ति का एहसास दिलाते हैं और जब वह अपनी शक्ति का एहसास करता है तो आत्मग्लानी से भर उठता है और अपने माता-पिता को मुक्त कराने का प्रण करता है और विजयमल एवं उसके शत्रुओं में भयंकर युद्ध होता है और विजयमल अपने माता-पिता को मुक्त कराता है।

वृद्ध कलाकार रामदेव जो इस कार्यक्रम के संचालक डॉ॰ अर्जुनदास केसरी के गोठानी (पैतृक गृह) के पड़ोसी भी हैं वे गायन में इतना मदमस्त हो गये कि उन्हें संचालक महोदय द्वारा कई बार गायन समाप्त करने का संकेत देना पड़ा।

पाँचवाँ कार्यक्रम—नटुआ (चमरही नृत्य) – इस नृत्य के प्रस्तुतकर्ता बयोवृद्ध कलाकार अपने परम्परागत वेशभूषा के साथ मंच पर प्रवेश किये और इन कलाकारों ने हाथों में छड़, बाली, झाल, ढोल आदि लिए हुए थे। नृत्य के कुछ समय बाद उपस्थित कलाकारों ने पुरुष कलाकार (जो स्त्रियों का रूप बनाये हुए थे) के सर पर एक मोटा कपड़ा रखकर और उसपर एक मिट्टी के तेल से भींगा हुआ बीड़ (कपड़े का बना रिंग) रखकर उसमें आग लगा दिया और उसपर पीतल का लोटा रख दिया लोटे के अन्दर भी आग जला दिया और कलाकार द्वारा संतुलन के साथ इस आकर्षक शैली में नृत्य प्रस्तुत किया गया दर्शक भी इस करतब को देखकर हतप्रभ थे। आजकल यह करतब थोड़े फेर बदल के साथ प्रदर्शनों में प्रस्तुत किया जाता है लड़की के सर पर चाय बनाना के नाम से, इस कार्यक्रम का एक पात्र तो विदूषक का कार्य कर रहा था और एक टेढ़ी

लकड़ी लेकर अपने विभिन्न प्रकार की शरारतपूर्ण प्रक्रिया से दर्शकों को हंसा रहा था। मनोविनोद की दृष्टि से यह नृत्य बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था।

यह नृत्य मुख्य रूप से चमड़ा का काम करने वाले चमारों का नृत्य है और यह नृत्य शादी-व्याह के अवसर पर बारात के समूह में किया जाता है और इस नृत्य में महिलाएँ भाग नहीं लेतीं पुरुष ही महिलाओं की भूमिका निभाते हैं इस नृत्य में गीतों का कोई सामंजस्य नहीं होता नृत्य में वाद्ययंत्रों का महत्व होता है और इसीसे दर्शकों का मनोरंजन होता है।

छठाँ कार्यक्रम– प्रस्तुतकर्ता मुन्ना और अन्य साथी। इस कार्यक्रम के प्रस्तुतकर्ता द्वारा सुप्रसिद्ध भक्तिपरक कजली "आगे आगे राम चलत है पीछे लक्ष्मन भाई" से प्रारम्भ किया। इस कजली को आज भी मिर्जापुर और जनपद सोनभद्र के देवी के मंदिरों एवं ग्रामिणांचलों व शहरों में ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी से लेकर भाद्रपक्ष के अंत तक कजली गायकों द्वारा सुना जा सकता है। इसका गायन मुख्य रूप से समूहों में किया जाता है और इसमें स्त्री व पुरुष दोनों ही भाग लेते हैं। मुख्य रूप से कजली का संबंध समीपवर्ती जनपद मिर्जापुर से है और यह भक्ति गीत कन्जला देवी जो विन्ध्यवासिनी देवी का पर्याय हैं उनको प्रसन्न करने के लिए मंदिरों में गाया जाता है। इसके गायन में अब हिन्दू और मुसलमान भी भाग लेते हैं और जनपद मिर्जापुर में इसका दंगल भी होता है जिसमें स्त्री और पुरुष भाग लेते हैं। अब भी यहाँ पर सात कजली गायकों के अखाड़े हैं।

(1) पं० शिवदास का अखाड़ा, (2) इमामन का अखाड़ा, (3) जहांगीर का अखाड़ा, (4) भैरो का अखाड़ा, (5) वत्फत का अखाड़ा, (6) मूरत का अखाड़ा, (7) अक्खड़ का अखाड़ा।

कजली का सबसे वड़ा दंगल सन् 1942 में समीपवर्ती जनपद मिर्जापुर में आयोजित हुआ था जिसमें राबर्ट्सगंज के कल्लू मास्टर को प्रथम पुरस्कार मिला था। सन् 1942-43 में कजली के दंगल का आयोजन जनपद चन्दौली के चकिया में किया गया था जिसमें वाराणसी के एक कलाकार को प्रथम पुरस्कार मिला था। 1944 में अहरौरा में श्री सदायत पाण्डेय की अध्यक्षता में एक दंगल सम्पन्न हुआ इसमें समस्याएँ "तकदीर और तदवीर, मेरा मन खोया अलबेली और नवेली दी गयीं" और इसमें भी कल्लू मास्टर को प्रथम पुरस्कार मिला था। सन् 1955 में राबर्ट्सगंज में राजा शारदा महेश के रिटायर्ड प्राध्यापक श्री पशुपति

नाथ दूबे की अध्यक्षता में एक दंगल का आयोजन किया गया था, समस्या दी गयी "प्रेम से भरी चुनरिया" इसमें प्रथम पुरस्कार पं० रामनिहोर को मिला। इसके बाद से अब तक कोई बड़ा दंगल मिर्जापुर अथवा सोनभद्र जनपद में नहीं हुआ।

सातवाँ कार्यक्रम—लोरिकायन गाथा का गायन प्रस्तुतकर्ता दूधनाथ एवं अन्य साथी जिसका प्रारम्भ अ-अ-अ रामा रामा राम का जनम अयोध्यामें भइल बा से प्रारम्भ किया गया जिसका कुछ अंश सुनाया गया।

लोरिकायन में हिन्दी के वीररस शृंगार, रचनात्मक रासो परम्परा है इनको लोरिकी से रचित है इस गाथा को नायक लोरिक के जन्म से इस लेखक द्वारा प्रारम्भ किया गया। मुख्यतः लोरिक के जन्म गाथा की कथा अभी तक प्रकाश में नहीं आयी थी लेकिन खोजो के फलस्वरूप यह गाथा प्रकाश में लायी गयी। और थोड़े ही समय में लोरिक के जन्म से लेकर अन्य वीरतापूर्ण कार्यों का गायन शैली में वर्णन किया गया लोरिक एक वीर गाथा है और इसका मुखय पात्र लोरिक है जो वर्तमान जनपद मिर्जापुर के गउरा माँ निवासी माना जाता है उसका विवाह जनपद सोनभद्र के अगोरी परगना में हुआ था और युद्ध के समय उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और लोरिक को अपने वीरता का अभूतपूर्व प्रदर्शन करना पड़ा। अन्त में जब लोरिक अपनी पत्नी को लेकर मारकुण्डी घाट पर आता है तो मंजरी लोरिक से कुछ प्रतीक चिह्न छोड़ने के लिए कहती है। लोरिक अपने तलवार से एक विशाल पाषाणखण्ड को काट देता है और यह पाषाणखण्ड गिर गया फिर मंजरी ने कहा कि आप ऐसा काटें जिससे ये पत्थर न गिरे। तब लोरिक एक हाथ से शिला पकड़ कर और दूसरे हाथ से तलवार से वार करता है और शिलाखण्ड दो फाकों में बँट गया। यह शौर्य व सुहाग का चिह्न आज भी मारकुण्डी घाट पर अवस्थित है।

आठवाँ कार्यक्रम—बनेठी भांजना - प्रस्तुतकर्ता रामदेव (विजयमल के गायक)। इस अद्भुत कला प्रदर्शन को रामदेव ने प्रस्तुत किया। बनेठी भांजने में मुख्य रूप से शक्ति की आवश्यकता होती है और 65 वर्ष की उम्र में जिस प्रकार रामदेव ने बनेठी भांजकर इस अद्भुत कला का प्रदर्शन किया वह काबिले तारीफ़ है। बनेठी को भांजते समय जो आवाज निकलती थी वह बड़ी ही आकर्षक थी।

तत्पश्चात् लोकवार्ता शोध संस्थान के सचिव व कार्यक्रम के संचालक महोदय ने लोकवार्ता शोध संस्थान के द्वारा किये जा रहे साहित्यिक क्षेत्रों में योगदान को दर्शाया और इस संस्थान की तपस्याओं से परिचित कराया और विकास के लिए नये लोगों को इस संस्था से जोड़ने का आह्वान किया। आकाशवाणी के निदेशक श्री रजनीश प्रसाद मिश्र उप-जिला अधिकारी, आर० एल० यादव और एम० ए० खान द्वारा कलाकारों एवं दर्शकों के प्रति सहानुभूति जतायी गयी और उनके उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए धन्यवाद दिया गया और बाजार में डफली लेकर नाचने वाले एक कलाकार होहन द्वारा उप-जिलाधिकारी महोदय को एंक गुलदस्ता प्रस्तुत किया गया और लेखक व शायर श्री मुनीर बख्स आलम द्वारा आकाश-वाणी के निदेशक श्री रजनीश मिश्र को भी एक गुलदस्ता भेंट किया गया। तत्पश्चात् संचालक महोदय द्वारा कार्यक्रम समाप्ति की घोषणा की गयी।

लोकोत्सव 98 के कार्यक्रम के समाप्ति के पश्चात् उप-जिलाधिकारी महोदय द्वारा लोकवार्ता शोध संस्थान की ओर से आयोजित प्रदर्शनी का अवलोकन किया गया। यह प्रदर्शनी अपने-आप में संकल्प का उत्कृष्ट नमूना था। जनपद सोनभद्र में निवास करने वाली जनजातियाँ जो अपने नृत्य के समय वाद्ययंत्रों का इस्तेमाल करती हैं उनमें – पैरी, निशान, डमरू, तासा, शरमा, करताल, घुवघा, शहनाई, खीमहार (सुग्गावाला), मानर, शिनौली आदि को प्रदर्शित किया गया था। इसके ठीक बगल में एक स्थल पर जनपद सोनभद्र व अन्य आस-पास के क्षेत्रों के आदिवासियों एवं जनजातियों के महिलाओं, पुरुषों, बच्चों के सामाजिक क्रिया-कलापों को चित्र के माध्यम से दर्शाया गया था। इन चित्रों में वरैला, शिवद्वार, वखान्हरा की विष्णु एवं अष्टभुजी प्रतिमा, पंचमुखी, युक्काफाल, कोरवा घाट, लखमा, लखनिया, भण्डरिया, कण्डा कोट के शैलचित्र, मूर्ति चित्र एवं गुफा चित्र, अगोरी किला का भी चित्र देखने को मिला एवं हस्तलिखित ग्रन्थ, मिर्जापुर के झामदास बाबा, मिर्जापुर का रासपण व अन्य ग्रन्थ भी प्रदर्शित किये गये थे। सीता कुण्ड के पास प्राप्त चित्रों के रेखाचित्र, तरकस, तीर-कमान, उखरा फन्दा (चिड़िया फंसाने वाला), सीकों द्वारा निर्मित झपोली-झपोला, इसके बाद दो आकर्षक लकड़ी की बनी कठपुतली को भी प्रदर्शित किया गया जो रंग-बिरंगे परिधान धारण किये हुए सजीव प्रतीत हो रहे थे।

महत्वपूर्ण पत्र

डॉ॰ केसरी जी !

'लोकवार्ता शोध पत्रिका' का स्वर्ण जयन्ती परिशिष्टांक (जनवरी-जून, 1998) मिला, धन्यवाद !

इसमें लोकगीतों कथाओं का भोजपुरी और अवधी में गद्य एवं छन्दों में सुन्दर रचनाएँ दी गयी हैं। लोक संस्कृति को जीवित रखने का आपका प्रयास प्रशंसनीय है।

भवदीय
माता प्रसाद
(राज्यपाल)
राज भवन, इटानगर-791111

सादरं प्रणतयः !

समादरणीय केसरी जी, आपकी 'लोकवार्ता शोध पत्रिका' का (जनवरी-जून, 98) का संयुक्तांक प्राप्त हुआ। शोधोपादेय लोक-साहित्य के समाकलन से परिपूर्ण यह अंक भी अपनी गौरवपूर्ण प्रकाशन-परम्परा का सफल प्रतिनिधित्व करता है। लोक-साहित्य पर इतनी सघन और महार्घ सामग्री प्रस्तुत करनेवाली पत्रिकाओं में 'लोकवार्ता' का स्थान सर्वोपरि है। किन्तु, मुद्रण-दोष चित्त को खिन्न करता है। आपने 'पत्र-प्रतिक्रिया' स्तम्भ में मेरा जो पत्रांश प्रकाशित किया है, उसमें भी मुद्रण-दोष रह गया है।

मैंने 'व्यावहारिक' लिखा था, पर 'व्यवहारिक' छपा है। इसी प्रकार 'का ग्रास' की जगह 'की ग्रास'; 'सारस्वत' की अपेक्षा 'शारस्वत'; 'ततोऽधिक' के स्थान पर 'ततोऽर्धक'; 'द्वितीयता नहीं है' के बदले 'अद्वितीयता नहीं है' तथा 'शश्वत्प्रतिष्ठ' के बजाय 'शाश्वत्प्रतिष्ठ' मुद्रण चिन्ता का विषय है। सम्पादन में भाषा का मार्जन ही प्रमुख होता है।

मेरे शुद्ध और स्पष्ट लेखन को उपेक्षित करके भाषिक स्वच्छन्द आचरण अशोभन है। आपको भाषा की शुद्धि पर ततोऽधिक ध्यान देने की जरूरत है।

ज्ञातव्य है. मेरा पूरा नाम 'श्रीरंजन' है, केवल 'रंजन' नहीं। 'श्री' नाम का ही अंश है। अलग से जोड़ा जाने वाला 'श्री' शब्द वह नहीं है। मुझे इतना ज्ञान या विवेक है कि स्वयं अपने नाम में 'श्री' नहीं जोड़ना चाहिए।

आपकी सम्पादन-प्रतिभा के प्रति मैं पूर्ण आश्वस्त होना चाहता हूँ।

अशेष सद्भावों के साथ
आपका स्नेहाधीन
श्रीरंजन सूरिदेव
भिखनापहाड़ी, पटना-800 006

विशेष—किन्हीं परिस्थितियों में उक्त दोष प्रूफ-शोधन में रह गये जिसका मुझे खेद है। श्रीरंजन जी भाषाशास्त्री हैं, प्रणम्य हैं।

भाई अर्जुनदास जी,

आपने आदिवासियों पर बहुत काम किया – लोक-कला और लोक-साहित्य की दृष्टि से। साधुवाद।

'लोकवार्ता' के अंक के लिए अनुगृहीत हूँ। दो कृतियाँ समीक्षार्थ भेज चुका हूँ, यह तीसरी। 'लोकवार्ता' में आदिवासियों के जीवन की झाँकी है – उनके संघर्ष की, उनके उन निराशाओं की, जिनके कारण वे पिछड़े हुए हैं। उन्हें मानव बनाने के लिए उनके विचारों में परिवर्तन लाना होगा। 'लोकवार्ता' इस ध्येय को पूरा कर सकती है। मेरी कृतियाँ समाज के व्यक्ति के नव-निर्माण से संबंधित हैं – उनका साहित्यिक मूल्य भले ही न हो, आज के साहित्यकार की दृष्टि में, पर उनमें गोर्की, टालस्टाय, गाँधी की वह तड़प है जिससे वे क्रांति कर सके। आप मेरे इस पत्र को प्रकाशित कर सकते हैं।

हरिहर प्रसाद गुप्त
भाषा-साहित्य-संस्थान
इलाहाबाद-03

नगरपालिका परिषद राबर्टसगंज - सोनभद्र

२६ जनवरी १९९८, स्वतंत्रता दिवस के पावन पर्व पर नगर पालिका परिषद राबर्टसगंज, सोनभद्र अपने नागरिकों का हार्दिक अभिनन्दन करती है तथा साथ ही शुभ कामनाएं भी व्यक्त करती है एवं अपने नगर के सम्मानित नागरिकों से निम्नलिखित अपेक्षाऐ भी रखती है।

१– सफाई हो जाने के बाद कूड़ा सड़कों पर न फेकें।

२– जल ही जीवन है, पेयजल का दुरपयोग न हो, इसके लिए अपने नलों में टोटियाँ अवश्य लगवा लें।

३– अतिक्रमण के घोर अपराध से बचें।

४– सड़कों पर छुट्टे पशु न छोड़े।

५– जन्म-मृत्यु पंजीकरण समय से करावें।

६– संक्रामण बिमारियों से बचने के लिए कटे फलों एवं खुले पदार्थो का प्रयोग न करें।

७– समय से करों का भुगतान करके पालिका की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दें।

८– पालिका के सम्पति की सुरक्षा करना आपका नैतिक कर्तव्य है।

९– पालिका के रचनात्मक कार्यो में अपना अमूल्य सहयोग एवं सुझाव दें

१०– यह नगर आपका है इसे, संवारने में सहयोग दें।

शुभ कामनाओं सहित।

टी० एन० तिवारी
अधिशासी अधिकारी

अजय शेखर
अध्यक्ष